महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलाससमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६२ अंक : १५
दयानन्दाब्दः १९६
विक्रम संवत्: श्रावण शुक्ल २०७७
कलि संवत्: ५१२१
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९/५९

i jki dkjh

अगस्त प्रथम २०२०

अनुक्रम

०१. हम वेदों की ओर क्यों लौटें?	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५३	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. आर्यावर्त देशीय मत-मतान्तर...	मदनमोहन विद्यासागर	१४
०५. श्रीकृष्ण- भगवान् अथवा योगेश्वर?	सोमेश 'पाठक'	२०
०६. विद्याप्राप्ति का काल- श्रावणी पर्व	सुशीला भगत	२६
०७. वीरों को आज बुलाता हूँ बल से...	पं. भारतेन्द्रनाथ	२८
०८. संस्था की ओर से...		३०
०९. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३३
१०. 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र'		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

*'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।*

हम वेदों की ओर क्यों लौटें?

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती को आर्य अनुयायियों द्वारा एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्यारे विशेषण से अलंकृत किया जाता है- **'वेदों वाले ऋषि।'** क्योंकि महर्षि का जीवन वेदमय था, वेदों के प्रचार-प्रसार के लिये था, वेदोद्धार के लिये था। कई हजार वर्षों के बाद उन्होंने वेदों का पुनरुद्धार किया, वेदाध्ययन का प्रचलन किया, मानवमात्र के लिये उनको प्रकट किया और वेद पढ़ने का अधिकार प्रदान किया। अत: वे इस युग के वेदोद्धारक ऋषि कहलाये। उनके सम्पूर्ण जीवन का, समग्र लेखन का, समस्त वक्तव्यों का प्रमुख सन्देश था- **वेदों की ओर लौटो।** यही सन्देश आदिसृष्टिकालीन ऋषि ब्रह्मा से लेकर महाभारतकालीन जैमिनि मुनि का था। प्रश्न उत्पन्न होता है कि आखिर वेदों को क्यों पढ़ें? और क्यों वेदों की ओर लौटें?

सभी ऋषि-मुनियों की मान्यता रही है कि वेद श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा देने वाले शास्त्र हैं, अत: श्रेष्ठ मानव के निर्माता हैं। श्रेष्ठ मानव के निर्माण से परिवार, समाज और राष्ट्र भी श्रेष्ठ बनेंगे और इनका उत्थान एवं कल्याण होगा। वेदविरुद्ध आचरण से पतन होगा। महर्षि ने अपने जीवनकाल में इस स्थिति को देखा था।

देश के पतन का कारण और उत्थान का उपाय

महर्षि दयानन्द भारतीय संस्कृति-सभ्यता, परम्परा, शिक्षा के ह्रास और देश के पतन का एक प्रमुख कारण मानते हैं- **वेद और वेदानुकूल शास्त्रों की शिक्षा का त्याग।** महर्षि वेदों की शिक्षा को कितना महत्त्वपूर्ण मानते थे, इसका संकेत इस बात से मिलता है कि उन्होंने दो कार्यों के लिए परमात्मा से प्रार्थना और याचना की है- एक-ऋषि-मुनि प्रणीत आर्ष शिक्षा को भारत में पुन: प्रवृत्त कराने हेतु और दो-गौ आदि पशुओं की रक्षा कराने हेतु। भारत की पतनावस्था को देखकर वे भावविह्वल होकर लिखते हैं- **''देश इस वक्त ऐसा बिगड़ा है कि इतना बिगाड़ कोई देश में देखने में नहीं आता है।''** (ऋषि दयानन्द के पत्र-विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४१)

अपने देश के पुनरुत्थान का उपाय वेद और वेदानुकूल शिक्षा को मानते हुए महर्षि तत्कालीन शासक और परमात्मा से प्रार्थना करते हुए लिखते हैं- **''जो कोई अन्यदेशीय राजा आर्यावर्त में है, उससे भी मेरी प्रार्थना यह है कि इस देश में सनातन ऋषि-मुनियों के किये उक्त ग्रन्थ और ऋषि-मुनियों द्वारा की गई वेदों की व्याख्या...उनकी प्रवृत्ति यथावत् करावे। इसी से यह देश सुधरेगा। अन्यथा नहीं।...सो मैं परमेश्वर से अत्यन्त प्रार्थना करता हूँ कि हे परमेश्वर!... हे करुणानिधे! सब जगत् के ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे कि सम्पूर्ण विद्या का लाभ वेदादिक सत्यशास्त्रों का ऋषि-मुनियों की रीति से हो।''** (वही, पृ. ४२,४३)

वेद विश्व की प्राचीनतम ज्ञान-विज्ञान की धरोहर

भारतीय परम्परा वेदों को आदि सृष्टि में प्राप्त ज्ञान मानती है। वेदों के कटु आलोचक पाश्चात्य लेखक भी इस तथ्य को एकमत से स्वीकार करते हैं कि विश्व के उपलब्ध साहित्य में वेद प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, प्राचीनतम ज्ञान है। इस प्रकार वेद विश्व की प्राचीनतम धरोहर और ज्ञानकोश हैं। इस धरोहर का भाषावैज्ञानिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक महत्त्व है जिसके ज्ञानार्जन के बिना हम इन क्षेत्रों में आगे नहीं बढ़ सकते। वेद मानव एवं मानवता के आदितम मूल हैं, अत: ज्ञान तथा किसी भी विद्या की आरम्भिकता और पूर्णता के लिए वेदों को सही अर्थों में जानना ही होगा और उनको जानने के लिए उनको पढ़ना होगा, अन्यथा हमारा ज्ञान और उक्त विद्याएँ अपूर्ण रह जायेंगी।

आज विश्व में अनेक सम्प्रदाय हैं और उनके अपने-अपने धार्मिक ग्रन्थ हैं। उन्होंने वेदों को आर्यों का धर्मग्रन्थ प्रचारित कर दिया है और कुछ नवीन ग्रन्थों को अपना धर्मग्रन्थ स्वीकार किया हुआ है। वे यह भूल जाते हैं कि जब वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं तो उनमें वर्णित वैदिक अर्थात् आर्य संस्कृति भी विश्व की प्राचीन संस्कृति सिद्ध होती है, क्योंकि तब न कोई अन्य धर्म पुस्तक थी, न

वैदिक धर्म से भिन्न कोई धर्म या मत था। केवल वैदिक या आर्य धर्म ही था। वेदोक्त धर्म अर्थात् आर्यत्व, मानवतावाद का ही दूसरा नाम है। इस प्रकार उसकी जड़ें वेदों से ही जुड़ी हैं। अत: वेदों का अध्ययन करना विश्व के सभी सम्प्रदाय-अनुगामियों के लिए भी उतना ही उपयोगी और निकटतापूर्ण है जितना वैदिकजनों अर्थात् आर्यों (हिन्दुओं) के लिये। अपनी मूल मानवीय धरोहर से जुड़ना कृतज्ञता के सामाजिक भाव का स्वीकार और प्रसार है अत: हम सबको वेद पढ़ने चाहियें।

मानवता का प्रेरणास्रोत

वेद किसी समुदाय, सम्प्रदाय, जाति या देश विशेष के ग्रन्थ नहीं हैं, वे मानवता के स्रोत हैं। उनमें पदे-पदे मानवीय कर्त्तव्यों और दानवीय अकर्त्तव्यों का निर्देश है, उनका परिणाम वर्णित है और उनका औचित्य विहित है। वेदों में आने वाले व्यक्ति, स्थान, समुदाय, जाति आदि के नाम वस्तुत: आध्यात्मिक और आधिदैविक रूपक हैं। उन्हें भ्रान्ति और अपूर्ण ज्ञान के आधार पर ऐतिहासिक अथवा व्यवहार के पदार्थ मान लिया जाता है। वेदोक्त सभी वर्णन धर्म-अधर्म, मानवता-दानवता और ज्ञान-विज्ञान के प्रतिपादक हैं। उन नामों, पदार्थों और घटनाओं के माध्यम से वेदों में मानव और मानवता के विकास तथा दानव और दानवता के विनाश को दिखाना ही लक्ष्य है। वहाँ यदि मानव, देव, ऋषि, मुनि, इन्द्र, विष्णु आदि का उल्लेख है तो वे इन गुणों से युक्त मानवों के स्तरों के वाचक हैं और असुर, राक्षस, दानव, वृत्र, अहि, बल आदि का उल्लेख है तो वे शब्दार्थों में निहित दुर्गुणों के प्रतीक हैं, किसी जाति या व्यक्ति के नहीं। यही कारण है कि वेदोक्त वर्णनों का परवर्ती ऐतिहासिक घटनाओं से ताल-मेल नहीं बैठता। वेद यह नहीं कहता कि तुम अमुक सम्प्रदायधारी बनो, अमुक देश के बनो, अमुक जाति के बनो। वह केवल मानव बनने की बात कहता है-''**मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्**'' (ऋग्. १०.५२.६) 'हे मनुष्यो! तुम वस्तुत: मानवीय गुणधारी मनुष्य बनो, मननशील बनो। तुम मनुष्य बनोगे तो तुम्हारी भावी पीढ़ियाँ मानव के परम रूप देवत्व को प्राप्त कर सकेंगी।'

यदि हम विश्व के वर्तमान सम्प्रदायों के धर्मग्रन्थों का अवलोकन करें तो उनमें पक्षपात, ईर्ष्या-द्वेष, अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा व दूसरों की निन्दा, अपनी जय और दूसरों की पराजय, अपने सम्प्रदाय के अनुगामियों पर कृपा और दूसरों पर क्रूरता आदि के कथन मिलेंगे। वेदों में केवल मानव और मानवीय गुणों की प्रशंसा तथा दानव और दानवीय गुणों की निन्दा मिलेगी। उनमें संकीर्णता न होकर वैश्वभाव की व्यापकता है। भारतीय संस्कृति में मानवीय गुणों को ही धर्म कहा गया है और अमानवीय दुर्गुणों को अधर्म। इसी आधार पर वेद ''धर्म का स्रोत'' हैं। वेदोक्त धर्म आज का संकीर्ण धर्म नहीं है, वह ऐसा ग्राह्य आचरण है जो मनुष्य बनने के लिए प्रत्येक स्थिति और अवस्था में 'धारण करने योग्य' है। यही कारण है कि मानवता, उदारता एवं दयालुता वेदाधारित भारतीय संस्कृति की उल्लेखनीय विशेषताएँ रही हैं।

आज समाज में हम संकीर्णता और उदारता की प्रतिक्रिया का स्पष्ट अन्तर देख रहे हैं। यह सहज मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है कि व्यक्ति जैसा पढ़ेगा वैसे संस्कार और विचार बनेंगे, जैसे संस्कार और विचार बनेंगे वैसा आचरण होगा, जैसा आचरण होगा वैसी समाज में प्रतिक्रिया होगी और जैसी प्रतिक्रिया होगी उसी के अनुसार समाज में सुख-शान्ति या दु:ख-अशान्ति का वातावरण बनेगा। वेदों में वर्तमान सम्प्रदायों की संकीर्णता न होकर ''**वसुधैव कुटुम्बकम्**'' के निर्माण की उदारता निहित है। वैश्वीकरण के इस युग में पूरे विश्व को परिवारवत् बनाने की धारणा को यदि कोई धर्मग्रन्थ पल्लवित और पुष्पित कर सकते हैं तो वे निर्विवाद रूप से वेद हैं। अत: हम सबको वेद पढ़ने चाहियें ताकि विश्वबन्धुत्व की भावना का विस्तार हो।

सत्यविद्याओं के आदि आगार

आर्यों के आदिपुरुष ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त प्रत्येक ऋषि, मुनि और लेखक की यह मान्यता रही है कि उन्होंने अपनी विद्या को वेदों से जानकर लिखा है। महर्षि दयानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी में जब इसी प्राचीन धारणा को ''**वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है**'' कहकर प्रस्तुत किया और अपने वेदभाष्य के द्वारा सिद्ध किया तो मैक्समूलर आदि पाश्चात्य भाष्यकारों व लेखकों ने इस धारणा का उपहास उड़ाया। दुराग्रह और मताग्रह-वश वे

महर्षि की मूल तर्कणा को नहीं समझ पाये। कभी-कभी बड़े से बड़ा विद्वान् और लेखक मस्तिष्क के किसी बिन्दु की शिथिलता के कारण असन्तुलित आचरण उपस्थित कर जाता है। बहुत-से आधुनिक लेखकों और वैज्ञानिकों की यही विरोधाभासी विचित्र स्थिति है। उन्हें जिस पर हँसना चाहिये उस पर मौन हैं और जिस पर गम्भीर होना चाहिये उस पर हँसते हैं। आज के वैज्ञानिकों ने नये-नये सिद्धान्तों का आविष्कार कर एक ओर दूसरे ग्रहों पर कदम रख दिया है तो दूसरी ओर आज भी डार्विन के इस सिद्धान्त को पकड़े बैठे हैं कि मनुष्य का विकास वनमानुषों और बन्दरों से हुआ। लगभग दो शताब्दियों से पशुशालाओं में इन पर नित नये प्रयोग करके इन्हें मनुष्य की तरह शिक्षित करने के प्रयास किये जाते रहे हैं किन्तु आज तक कोई वनमानुष या बन्दर न तो मनुष्य की तरह शिक्षित हुआ और न मनुष्य के रूप में विकसित हुआ। फिर भी उस हास्यास्पद धारणा को दृढ़मूल कर रहे हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त को अमान्य सिद्ध किया है किन्तु उनकी आवाज की स्थिति 'नक्कारखाने में तूती की आवाज' जैसी है।

दूसरी ओर, भारतीय साहित्य यह घोषणा करता है कि 'मनुष्य मूलतः मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ है और इसे आरम्भ में ईश्वर की प्रेरणा से ज्ञान प्राप्त हुआ है।' इस सिद्धान्त को स्वीकार्य कोटि का नहीं मानते, जबकि प्राकृतिक साक्ष्य इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। प्राकृतिक नियम के अनुसार, प्राकृतिक प्रक्रिया सतत चलती रहती है। बीज के वृक्ष से बनना, प्रजनन प्रक्रिया से प्राणियों का वही वंश चलना प्राकृतिक प्रक्रियाएँ हैं। ये सतत चल रही हैं। मनुष्य से मनुष्य आज भी जन्म ले रहा है किन्तु बन्दर से दुनिया के किसी भाग में कोई मनुष्य नहीं बन रहा। और न सहस्रों वर्षों के ज्ञात इतिहास में कभी बना है। आज एक ओर उच्चतम मानवीय संस्कृति-सभ्यता विकसित है, तो समकाल में दूसरी ओर अफ्रीका, अंडमान आदि के जंगलों में पूर्ण नग्न, ज्ञानरहित, संस्कृति-सभ्यता विहीन पशुवत् मनुष्य वर्तमान हैं। उन्हें आज तक ज्ञान का चतुर्थांश भी क्यों नहीं प्राप्त हुआ अथवा उनमें ज्ञान विकसित क्यों नहीं हुआ? स्पष्ट है कि ईश्वरीय प्रेरणा से जिन ग्रहणशील मेधावी जनों में ज्ञान का प्रकाश हुआ, उन्होंने उसे ग्रहण कर अन्यों अथवा भावी पीढ़ियों को दिया। इस प्रकार उनके सम्पर्क में आने से ज्ञान, संस्कृति-सभ्यता का विकास होता गया। यही स्थिति वेदों की है। ईश्वर ने जो ज्ञान का प्रकाश ऋषियों के आत्मा में किया, उसको ग्रहण करने के उपरान्त ज्ञान का प्रसार हुआ। उसी ज्ञान का नाम वेद है। उसमें वर्णित एक ज्ञान से दूसरा ज्ञान वर्धित होता गया। यह थी वह मूल तर्कणा जिसे भारतीय परम्परा स्वीकारती और कहती आ रही है। इसमें न तो कोई अवैज्ञानिकता है, न अप्राकृतिक प्रक्रिया और न उपहास की स्थिति। यह कोरा आस्थावाद भी नहीं है।

ईश्वरीय प्रेरणा से प्राप्त उस वेदरूपी ज्ञान में जो आदेश, निर्देश, उपदेश, विधान, ज्ञान-विज्ञान थे उनसे सामाजिक व्यवस्थाएँ बनीं और विद्या रूपी ज्ञान का अंकुर पड़ा। फिर एक विद्या से दूसरी विद्या चिन्तन-मनन द्वारा विकसित होती गई। समाज सुसंस्कृत, शिक्षित एवं सभ्य बना। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्थाओं और कर्त्तव्यों की वह आदिम मूल प्रेरणा वेदों में निहित है। अतः उस ज्ञान के अर्जन के लिए हमें वेद पढ़ने चाहियें। वेद में बीज रूप में अनन्त ज्ञान निहित है, क्योंकि उसका प्रदाता भी अनन्त ज्ञानवान् है।

मोक्ष प्राप्ति का साधन और ईश्वरोपासना का माध्यम

वैदिक संस्कृति में प्रत्येक मनुष्य का चरम लक्ष्य 'मोक्षप्राप्ति' को माना गया है। दुःखों से मुक्ति और जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय 'मोक्षप्राप्ति' है और मोक्षप्राप्ति का एकमात्र उपाय 'ईश्वर-साक्षात्कार' है। इस स्तर तक मनुष्य को वेदोक्त धर्म-कर्म पहुँचाते हैं। उन कर्मों के ज्ञान और वेदोक्त आचरण के लिए वेद का अध्ययन परम आवश्यक है। महर्षि मनु ने वेदाध्ययन को सबसे प्रमुख कर्त्तव्य और 'परम तप' घोषित किया है। वेद के स्वाध्याय को सायं-प्रातः अनुष्ठित किये जाने वाले 'ब्रह्मयज्ञ' का अनिवार्य भाग माना है। योगदर्शन और उसके भाष्य में वेदों के स्वाध्याय को योगसिद्धि और इष्टदेव परमात्मा की प्राप्ति का साधन स्वीकार किया है-

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः (योग. २.४४)

अर्थात्- 'वेदों का स्वाध्याय करने से उपासक सबके इष्टदेव परमात्मा के साथ घनिष्ठ मेल हो जाता है।' फिर-

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

(योग. व्यासभाष्य १.४८)

अर्थात्-'स्वाध्याय से योग में सिद्धि प्राप्त करे और योग से स्वाध्याय पर मनन करे। योग और स्वाध्याय की समृद्धि से परमात्मा आत्मा में प्रकाशित होता है, अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार होता है।'

यज्ञों की समृद्धता वेद मन्त्रों से

सभी वैदिक ऋषियों ने एकमत से उक्त तथ्य को स्वीकार किया है। इन ऋषियों का निर्विवाद मत है कि वेदों की वाणी "दैवी वाक्" है और दैवी वाक् से ईश्वरोपासना और यज्ञानुष्ठान अधिक फलदायक होते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि मानुषवाक् में किये गये सभी यज्ञ हीनयज्ञ हैं-

"**व्यृद्धं वै तद् यज्ञस्य यन्मानुषम्**"

(१.४.३.३५)

अर्थात्- 'जो मानुष वाक् में यज्ञों का करना है वह यज्ञ का हीन रूप है।' अतः यज्ञों की समृद्धता, मोक्ष की सफलता प्राप्त करने के लिये हमें वेद पढ़ने चाहियें।

स्वयं वेदों में अनेकत्र कहा गया है वेदों को पढ़ने का अधिकार मानव-मात्र को है। सभी यथासामर्थ्य पढ़ें। यज्ञों के अनुष्ठान का अधिकार भी मानव-मात्र को है। जो लोग शूद्र, नारी आदि किसी भी मानव के लिए वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान आदि का निषेध करते हैं वे वेदों के हितैषी नहीं, शत्रु हैं; ईश्वर के अनुयायी नहीं, विरोधी हैं; वैदिक संस्कृति के उपासक नहीं, घातक हैं। वस्तुतः वे मानव और मानवता के प्रच्छन्न शत्रु हैं। ऐसे लोगों को स्वयं को वैदिक या वेदानुयायी कहना ही छोड़ देना चाहिये। वे वेद के नाम पर पाखण्ड फैलाते हैं, स्वार्थ सिद्ध करते हैं।

वेदों का दुर्भाग्योदय

इस देश में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में वेदाध्ययन परम्परा का दुर्भाग्योदय तब आरम्भ हुआ जब उसके स्थान पर रूढ़िवादी पौराणिकों ने अधिकांश जनता के लिये वेद पढ़ने का अधिकार वर्जित कर दिया और उसे केवल अपने लिए सुरक्षित करके अन्यों को वेदों के दर्शन करना भी निषिद्ध कर दिया। इस प्रकार उन लोगों ने देश को शिक्षा से वंचित कर अज्ञानी बना दिया। विश्वगुरु का गौरव प्राप्त यह भारत योग्य शिष्य भी नहीं रहा। रूढ़िवादी पौराणिकों की कुण्ठित बुद्धि की सोच देखिये कि संसार के सभी मत वाले अपने ग्रन्थों का अधिकाधिक भाषाओं में अनुवाद कराकर लाखों की संख्या में मुफ़्त वितरित करते हैं। उससे उनका मत भी विस्तारित हुआ है। पौराणिक लोगों ने सारा बल अपने धर्मग्रन्थों को छुपाने में लगाया है। उससे वैदिक धर्म का ह्रास होता गया। इस प्रकार उनकी यह प्रवृत्ति धर्मविनाशक सिद्ध हुई है।

महर्षि दयानन्द ने वेदाध्ययन का मानव मात्र को अधिकार पुनः प्रदान किया। उन्होंने तर्क दिया है कि परमात्मा ने सभी स्त्री-पुरुषों को बुद्धि, वाणी, श्रोत्र वेदाध्ययन-श्रवण आदि के लिए प्रदान किये हैं, अतः प्रत्येक स्त्री-पुरुष का ज्ञान-विज्ञान प्राप्ति का स्वाभाविक अधिकार है। मानव मात्र को वेद पढ़ाये बिना हम वेद के "**कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्**" के आदेश का अनुपालन नहीं कर सकते। अनार्यों, पिछड़ों को भी जब वेद पढ़ायेंगे तो तभी वे आर्य बनेंगे और वैदिक धर्म का विस्तार हो सकेगा। इसीलिए महर्षि ने सभी को यह सन्देश दिया कि '**वेदों की ओर लौटो।**' '**वेदों वाले ऋषि**' ने जो हमें वेदाध्ययन करने का शुभ अवसर प्रदान किया है, उसका लाभ मानव मात्र को उठाना चाहिये। **डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

मृत्यु सूक्त-५३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम।।

हम मन्त्र में चर्चा कर रहे हैं कि राजा की मृत्यु के बाद उसका शासन कौन और कैसे सम्भाले। इस मन्त्र में जो ऋग्वेद के दशम मण्डल के अठारहवें सूक्त का नवम मन्त्र है, उसमें कहा गया है **धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय** कि जो मर गया उसके हाथ से धनुष लेकर जो समर्थ है उसके हाथ में दिया जाये। अर्थात् जो सत्ता है, अधिकार है वह दूसरे किसके हाथ में दी जाये, **क्षत्राय वर्चसे बलाय** जो बल के लिये, तेज के लिये उपयुक्त पात्र है, अर्थात् जो तेजस्वी है, बलवान् है और जिसमें दण्ड धारण करने की क्षमता है, धनुष धारण करने की क्षमता है, जो दण्ड का संचालन करने योग्य है। हमने पिछले सन्दर्भ में देखा था- **दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः।** कहा है कि अपराध कैसा भी क्यों न हो, यदि व्यक्ति समझदारी के साथ, विवेक के साथ दण्ड का प्रयोग करता है तो प्रजा कभी मोहग्रस्त नहीं होती। दण्ड का भय समाज को यथावत् चलने के लिए प्रेरित करता है, अपने मार्ग पर जाने के लिए बाध्य करता है। इसके भय की चर्चा करते हुए मनु ने एक और सन्दर्भ में कहा है- **यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा, प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत् साधु पश्यति...।**

दण्ड में सामर्थ्य तो है, लेकिन उस सामर्थ्य का उपयोग कहाँ करना है, यह मनुष्य के विवेक पर निर्भर करता है। यह दण्ड के संचालक पर निर्भर करता है। दण्ड कठोर से कठोर है, लेकिन वह अपराधी को दिया जाये या किसी सज्जन व्यक्ति के ऊपर डाला जाये? वह दोनों जगह जा सकता है। जो दुष्ट लोग हैं, वह सज्जनों को पीड़ित करते हैं और जो सज्जन लोग हैं वह दुष्टों को दण्डित करते हैं।

यहाँ पर हमें समझने की बात यह है कि जब बात सन्त के व्यवहार की करते हैं तो वहाँ दया के पक्ष को हम प्रबल रखते हैं और जब राजा की बात करते हैं तो वहाँ न्याय के पक्ष को प्रबल रखते हैं। अन्तर कितना होता है? आशय दोनों का एक ही होता है, परिणाम दोनों का एक ही हम चाहते हैं। एक व्यक्ति न्याय के माध्यम से काम करना चाहता है और जो दयालु है वह उसे क्षमा करता है। वह अपराधी के हृदय में जो भाव हैं, उनको परिवर्तित करना चाहता है। उसमें भाव परिवर्तित करने की क्षमता भी है और उसका विषय भी है। जो सन्त व्यक्ति है वह दण्ड से काम नहीं करता। न उसके पास दण्ड होता है न ही उसका अधिकार होता है। वह अपने पास आने वाले व्यक्ति को कैसे सुधारे? उसके पास व्यक्ति आते ही रहते हैं, वह समाज में सुधारने का ही कार्य करता है लेकिन राजा की तरह दण्ड देकर सुधारने का कार्य नहीं करता। वह व्यक्ति को समझा-बुझाकर, उदाहरण प्रस्तुत करके अपने जीवन की उदारता के द्वारा उनको सुधारता है। इनके अन्तर समझने का आधार क्या है? राजा दण्ड से उसे प्रताड़ित करता है-पराजित करता है, जेल में डालता है तब वह बदलता है।

इसका एक उदाहरण मुझे स्मरण आ रहा है- दीनानगर के स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने एक बार एक घटना सुनाई। विभाजन के पहले पाकिस्तान में किसी जगह पर

बड़ी मंडी थी, वहाँ कुछ आर्यसमाजी रहते थे। वे लोग कभी-कभी उत्सव करना चाहते थे। वहाँ का इलाका मुस्लिम बहुल था और वहाँ के दादा लोगों में एक पहलवान था। वह उन पण्डालों को तोड़ देता था, पत्थर फेंकता था, कभी भी उन्हें काम नहीं करने देता था, उनका समारोह होने नहीं देता था। उन लोगों ने स्वामी जी से कहा कि महाराज यह व्यक्ति हमें काम नहीं करने देता और यह बलवान् है, इसके साथ लोग बहुत हैं, इसके समर्थक इसके विचार वाले लोगों की संख्या अधिक है, इसलिये हम यहाँ कुछ कर नहीं पाते। स्वामी जी ने कहा, कोई बात नहीं, तुम लोग केवल इतना करना कि जब कभी यह कष्ट में हो तो तुम मुझे तार से सूचित कर देना। संयोग ऐसा हुआ कि जो प्रसिद्ध भूकम्प आया क्वेटा में, फिर वहाँ हैजा फैला और उस हैजे के चक्कर में यह पहलवान आ गया। हैजे के चक्कर में आया तो घर के लोग उसे छोड़कर भाग गए। आज की तरह से चिकित्सा की सुविधायें तो थीं नहीं, न इतनी औषध उपलब्ध थीं, वह अकेला, बीमार, गन्दा पड़ा हुआ था। किसी को बात याद आयी कि स्वामी जी ने कहा था कि यह पहलवान कभी संकट में हो तो आप मुझे तार दे देना। उन्होंने दीनानगर तार दे दिया और पण्डित जी वहाँ चले गए। उस समय उनका नाम ब्रह्मचारी रामचन्द्र था। वहाँ जाकर उन्होंने उसे बीमार देखा, कोई चिकित्सा नहीं, कोई सेवा नहीं। उन्होंने धीरे-धीरे उसको ठीक किया। जो औषध उनके पास थी, वह दी। उसकी सेवा की। धीरे से उसने आँख खोली-पूछा कौन हो भाई? उन्होंने कहा कोई नहीं, मैं तुम्हारा भाई हूँ, चिन्ता मत करो, आराम करो। वह पहलवान बोला-नहीं, भाई तो मुझे छोड़कर चले गये। मेरा परिवार मुझे छोड़कर चला गया। तुम ऐसे कैसे भाई हो? उन्होंने कहा, कोई बात नहीं तुम ठीक हो जाओ फिर बतायेंगे। उसकी सेवा करने के बाद वह ठीक हुआ तो उसने फिर पूछा कि कौन हो? उत्तर मिला मैं आर्यसमाजी भाई हूँ। वह बोला, अरे! वे तो मेरे विरोधी हैं, उनसे तो मेरी लड़ाई रहती है। पण्डित जी ने कहा, कोई बात नहीं, लेकिन वे तुम्हारे साथ अच्छा ही करेंगे क्योंकि तुम उनके भाई हो। यह सुनकर वह व्यक्ति बड़ा द्रवित हो गया और सोचा कि मैं जिनका अनिष्ट करता हूँ, अनुपकार करता हूँ, जिनके कार्य में व्यवधान, बाधा पहुँचाता हूँ वे मेरा इस विकट परिस्थिति में सहयोग करते हैं। उस व्यक्ति ने स्वामी जी के सामने प्रतिज्ञा की, कि आज के बाद आपका उत्सव नियमित होगा और कोई उसमें व्यवधान नहीं डालेगा। तबसे वहाँ का उत्सव होता रहा, जब तक पाकिस्तान बना।

जो सन्त है, वह सेवा से, उपदेश से, प्रेरणा से किसी को सुधारता है, लेकिन यह काम राजा का नहीं है। राजा तो दण्ड से सुधारता है। राजा के नियम आदेश होते हैं, उपदेश नहीं होते हैं, परामर्श या सलाह नहीं होते, निवेदन, प्रार्थना नहीं होती, आदेश होता है और आदेश का विकल्प दण्ड होता है। तुमने गलत किया है तो तुमको दण्ड मिलना चाहिये। राजा की विशेषता किस बात में है, तो कहता है **'नेता चेत् साधु पश्यति।'** मूल चीज है कि आपका निर्णय ठीक होना चाहिये। आप विवेकपूर्वक दण्ड का संचालन करें। विवेकपूर्वक पुरस्कार दें तो निश्चित उसका प्रभाव अनुकूल होगा और यदि अनुचित रूप से दण्ड दिया गया तो प्रतिक्रिया होगी, बगावत होगी, विद्रोह होगा। अतः मनु महाराज ने कहा- **यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा** दण्ड जो कैसा है, भयंकर। **श्याम**- काला, **लोहिताक्षः**- लाल आँखों वाला। जैसा हम लोग राक्षसों का चित्र बनाते हैं। गहरे काले रंग में लाला चमकती हुई आँखें दिखाकर, उसे क्रूर बताकर कहते हैं, यह राक्षस है। तो दण्ड भी वैसा ही भय पैदा करने वाला है। यह सब परिस्थिति क्यों बनाते हैं? उससे भय पैदा होता है। सुन्दर चीजों में तो आकर्षण पैदा होता है और जिसका रूप क्रूर हो, भयंकर हो, उससे भय पैदा होता है। अतः कहते हैं- **यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा**- जहाँ ऐसा दण्ड विचरण करता है, **प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति**- वहाँ कभी भी प्रजायें नियम से विमुख नहीं होती, मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करतीं। बस एक चीज ध्यान रखने की है, **नेता चेत् साधु पश्यति**- नेता को ऐसा होना चाहिए जो मजबूत हो, शत्रु को जानता हो, समझता हो, मित्र को पहचान शत्रु को दण्डित करने में समर्थ हो।

मन्त्र में कहा है **विश्वा स्पृधो अभिमातीः जयेम।**

हम जो लोग कैसे हैं- **वयं सुवीराः वीरवन्तः कल्याण वीराः।** मतलब हमारा जो पुरुषार्थ है, जो युद्ध है वह कल्याण के परिणाम को देने वाला है। **विश्वा स्पृधो अभिमातीर्जयेम।** हमारे अन्दर यह सामर्थ्य है कि हमारे जितने शत्रु हैं, बाधा पहुँचाने वाले हैं, कण्टक हैं उनको हम जीत सकते हैं। समस्त शत्रुओं को अपने वश में कर सकते हैं। इसलिए यह जो दण्ड की, शासन की योग्यता है, क्षमता है वह तो होनी ही चाहिये और यह एक बार भी स्थान रिक्त नहीं होना चाहिये। यदि थोड़ी सी भी उपेक्षा हो गयी, थोड़ा भी बन्धन शिथिल हो गया, निगरानी कम हो गयी, तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह उल्टा चलता है। चाणक्य ने एक जगह बड़ी सुन्दर बात लिखी है कि जो शासन के कर्मचारी हैं, उनकी सदा निगरानी करनी चाहिये। यदि कभी भी आपने उन पर कार्य छोड़ दिया तो आपका काम वो बिगाड़ देंगे। उनको काम करने की कभी इच्छा नहीं होती। **अश्वसमानधर्माणो हि मनुष्याः कर्मसु विकुर्वते। कर्मसु विकुर्वते**- कर्म करने की इच्छा नहीं होती। मनुष्य अश्व समान धर्मवाला है। यदि आप एक दिन घोड़े को नहीं चलायें, घोड़े को काम में न लगायें तो अगले दिन वह काम करने के लिए तैयार ही नहीं होता है। इसलिए उसे प्रतिदिन काम में लगाने की आवश्यकता होती है। आचार्य चाणक्य कहते हैं- कि **अश्वसमानधर्माणो हि मनुष्याः** मनुष्यों का स्वभाव भी वैसा ही है जैसा घोड़ों का होता है। यदि इनकी आप निगरानी नहीं करते, इनका निरीक्षण-परीक्षण नहीं करते, तो यह कभी भी ईमानदारी को छोड़कर बेईमानी पर आ जाता है। **कर्मसु विकुर्वते**, कर्म को उल्टा करने लगता है, कर्मों की उपेक्षा करने लगता है। तो वे उपेक्षा न करें, इसलिए उनके सामने भय की आवश्यकता होती है। भय उसमें रहता है तो वह ठीक रास्ते पर चलता है और यदि भय नहीं रहता तो वह ठीक रास्ते पर नहीं चलता।

विश्वास्पृधो अभिमातीर्जयेम कहता है कि राजा में यह सामर्थ्य होना चाहिये कि वह कभी भी संकट आने पर शत्रु से सामना होने पर उनको जीत सके। विजय का जो भाव है उसका बड़ा महत्त्व है। **वयं जयेम**- वेद का सन्देश है कि हम सदा जयशील बनें। वेद कहता है कि चाहे अन्दर का शासन हो, चाहे बाहर का शासन हो, दोनों जगह हममें जीतने की योग्यता होनी चाहिये, जीतने का साहस होना चाहिये, जीतने का उत्साह होना चाहिये। **वयं सुवीराः** - हम जितने हैं, वीर हैं। इस वीर शब्द का बड़ा अच्छा अर्थ बताया है आचार्य यास्क ने। **वीरयत्यमित्रान्**। वीर किसे कहते हैं- तो कहा **अमित्रान् वीरयति**। जो दुष्ट लोग हैं, हिंसक लोग हैं उनको जो समाप्त कर देता है। ऐसे शत्रुओं को मिटाने वाले को वीर कहते हैं। इसलिए यहाँ मन्त्र में कहा कि हम वीर बनें। **वयं जयेम त्वया युजा**- कहता है कि हम उस अच्छाई के साथ जुड़कर, उस श्रेष्ठता के साथ जुड़कर सदा जय को प्राप्त करें। तो उस जय को प्राप्त करने के लिए इस मन्त्र में निर्देश दिया गया कि हम यह सामर्थ्य रखते हैं और वह सामर्थ्य कभी भी एक क्षण के लिये भी अनुपस्थित नहीं है। वह सदा विद्यमान है इसलिए राजा को हम राजा कहते ही इसलिए हैं क्योंकि संस्कृत में शब्दों की जो रचना होती है, उसमें गहरा अर्थ छिपा होता है। उसी तरह से यहाँ बताया गया है। उसमें कौन सा अर्थ छिपा है, **'उसकी दीप्ति'**। राजा शब्द बना है- राजृ दीप्तौ धातु से। अतः यह पूरा मन्त्र इस बात को कह रहा है कि मृत्यु शासन में बाधा नहीं है। मृत्यु यदि राजा की हो जाती है तो **धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।** तो तुरन्त वह सत्ता, वह राज्य, वह धनुष दूसरे के पास आ जाता है और वह उसको सँभालता है।

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

एक मुस्लिम परिवार के सत्यनिष्ठ युवक के उद्‌गार- वे जन धन्य हैं जिनका आत्मा सत्यासत्य का निर्णय करने में रुचि लेकर असत्य का परित्याग करके सत्य को ग्रहण करने का साहस दिखाता है। मेरे एक अत्यन्त प्रेमी सुपठित युवक एक लम्बे समय से अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये वैदिक साहित्य के स्वाध्याय में बड़ी रुचि से लगे हैं। यदा-कदा चलभाष पर कुछ पूछ भी लेते हैं। अभी इन दिनों वैदिक त्रैतवाद पर कुछ चर्चा छेड़ कर कहा कि बहुत कुछ विज्ञान सम्मत होने से तो मेरी समझ में आ गया। आप इस पर कुछ और प्रकाश डालें।

उनसे पूछा, क्या आपने मेरी पुस्तक वैदिक इस्लाम पढ़ी है? उस सत्यनिष्ठ युवक ने कहा, पढ़ी है। इन दिनों आस्तिकवाद का स्वाध्याय आरम्भ किया है। मैंने उस ज्ञानपिपासु युवक से कहा, इस ग्रन्थ के आर-पार जाकर आपके बहुत संशय विनष्ट हो जावेंगे। भ्रम भञ्जन हो जायेगा। आप स्वयं को उजाले में पायेंगे। त्रैतवाद अब बड़े-बड़े मुस्लिम विचारकों को खींच रहा है। डॉ. गुलाम जेलानी अल्लाह के गुण, कर्म, स्वभाव को अनादि मानते हैं। धर्म को भी अनादि मानते हैं। धर्म समय के साथ न बदलता न विकसित होता। यह वह डंके की चोट से मानते हैं। ईश्वर आदिल (न्यायकारी) है तो कब से न्यायकारी है? उत्तर स्पष्ट है अनादिकाल से। अनादिकाल से किसे न्याय देता आ रहा है? उत्तर यही तो होगा कि जीवों को। फिर तो जीव का अनादित्व भी सिद्ध हो गया।

अल्लाह को कुरान राज़िक (अन्न धन देनेवाला) मानता है। अल्लाह राज़िक कबसे है? उत्तर स्पष्ट है अनादिकाल से। देने को कुछ था तभी तो देता चला आ रहा है और दाता कहलाता है, सो प्रकृति भी अनादि सिद्ध हो गई। विज्ञान का यह घोष पूरे विश्व में सर्वमान्य है Matter can neither be created nor it can be destroyed. इस्लाम अल्लाह को सातवें आसमान पर मानता था और हाज़िर नाज़िर (सर्वव्यापक) भी कहता है। जब वह सर्वव्यापक है तो 'सर्व' की सत्ता स्वत: सिद्ध हो गई। सर सैयद का यह कथन उस प्रेमी को सप्रमाण सुनाया, ''अल्लाह चाहे भी तो हमें अपनी सृष्टि से नहीं निकाल सकता।'' पहले इस्लाम मानता था कि अल्लाह जो चाहे कर सकता है। कराची के एक शास्त्रार्थ में प्रेम जी ने कहा, ''वह मुझे अपनी सृष्टि से निकाल कर दिखावे।'' वही आशय सर सैयद का है। आशा इस बात की है कि वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि में हम विभिन्न मतों के प्रमाण देने पर ध्यान दें।

कुछ चेतना आ रही है- सभाओं ने, समाजों ने प्रचार में रुचि लेनी ही मन्द और बन्द कर दी है। फिर भी अपने बलबूते पर धर्म-प्रचार करनेवाले उत्साही सुपठित युवकों की धर्म-प्रचार की धुन अपने परिणाम दिखा रही है। विदेश में बैठे हमारे ऐसे मिशनरी युवकों ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में मेरे साहित्य के अनुवाद व प्रकाशन की अनुमति लेकर बहुत बड़ा साहस दिखाया है। लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द ग्रन्थ का मराठी अनुवाद तो पूरा हो चुका है। दक्षिण भारत की किसी भाषा में पं. लेखराम जी की जीवनी पहली बार छपने वाली है। मेरे पास ऐसी बहुत-सी जानकारियाँ हैं जो समय-समय पर दी जावेंगी। महामारी के कारण साहित्य प्रकाशन व प्रसारण में बहुत बाधायें हैं।

हरियाणा से गौरवपूर्ण समाचार- धर्मवीर जी के जीवनकाल में धर्मद्वेषी कई तत्त्वों ने षड्यन्त्र रचकर चौधरी मित्रसेन के पड़ोस में रहने वाले एक जाट युवक को आगे करके जाटों को भ्रमित करने के लिये, आर्यसमाज को हानि पहुंचाने के लिये योजनाबद्ध ढंग से एक विषैला अभियान छेड़ा। रामपाल और ओवैसी हैदराबाद आदि से उसके तार जुड़े हुये थे। वह नये से नये वार करके लीडर बनना चाहता था। धर्मवीर जी ने उसका इलाज करने की प्रेरणा दी तो मैंने कहा इसके प्रत्येक वार-प्रहार का प्रतिकार तो किया जावे परन्तु लेखों व भाषणों में उसका नामोल्लेख कतई न हो। बड़ी धूर्तता से उसने और उसके पालकों ने चौधरी छोटूराम जी आर्य नेता के नाम पर मनगढ़न्त कहानियाँ गढ़-गढ़कर परोसनी आरम्भ कर दीं।

षड्यन्त्र गम्भीर था। मैंने धर्मवीरजी से कहा, उत्तर क्या देना है, कैसे देना है? यह सब कुछ मैं सुझाता व बताता जाऊँगा, परन्तु आगे कोई दृढ़व्रती जाट कुलोत्पन्न

सुयोग्य व्यक्ति लगेगा तो हम सफल होंगे? मैंने चौधरी मित्रसेन जी से भी बात की। आपने चौधरी छोटूराम जी के व्याख्यानों व लेखों के एक संग्रह का अनुवाद मुझसे करवाकर छपवाया। चौधरी जी से विचार करके उस पुस्तक के आरम्भ में चौधरी छोटूराम जी का संक्षिप्त परन्तु ठोस जीवन-परिचय दिया। उस पुस्तक का वितरण व प्रसारण कहाँ हुआ? मुझे तो यह भी पता नहीं। मुझे तो एक प्रति भी न मिली। कहीं से एक प्रति प्राप्त कर ही ली।

हमारा दुर्भाग्य कि धर्मवीर जी तथा चौधरी मित्रसेन जी दोनों ही हमसे छिन गये। नेता लोग निष्क्रिय रहे। ईश्वर की अपार कृपा से प्रिं. अभय जी, विकास आर्य, श्री अमित शर्मा जी की मिशनरी मण्डली उठकर मैदान में उतर आई। ग्राम-ग्राम इस मिशनरी टोली ने इस षड्यन्त्र की पोल खोलने के लिये दिनरात एक कर दिया। वे दिन में दस-दस बार उनके विषैली कुतर्कों व कहानियों के उत्तर में क्या कहना है? कैसे कहना है? चलभाष पर मुझसे विचार करते। मैंने उन्हें कहा, बस षड्यन्त्रकारी का नाम ले-लेकर उसका महत्त्व नहीं बढ़ाना। **मेरे से और डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी से पूछे बिना किसी नई बात का हलका उत्तर नहीं देना।**

यह गत कई वर्षों में आर्यसमाज का पहला आन्दोलन है जो लम्बे समय तक चला और सब कुछ युवकों ने ही किया। ऐसा मोर्चा सम्भाला कि आर्यसमाज के जन्मकाल से लेकर भक्त फूलसिंह, चौधरी छोटूराम, चौधरी चरणसिंह, चौधरी पृथ्वी सिंह बेधड़क, चौधरी पीरु सिंह, चौधरी जगलाल, आचार्य प्रियव्रत, पं. पूर्णचन्द जी बड़ौत, अमर हुतात्मा मेघराज तक सब आर्य नर-रत्नों की धर्म-भक्ति, देश-प्रेम, समाज-सेवा, तपत्याग के असंख्य प्रेरक प्रसंग हमने खोज-खोज कर, खोद-खोद कर संग्रहीत कर लिये। चौधरी छोटूरामजी के नाम का दुरुपयोग करने की कुचाल तो विफल बना दी गई। अब जातिघाती गुरुडम के अड्डों से ऋषि पर, आर्यसमाज पर अंग्रेजी राज से प्रेम करने का दुष्प्रचार आरम्भ हुआ।

अंग्रेज सरकार के रिकॉर्ड (record) में आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द की कैसी-कैसी चर्चा है। आर्यसमाज और आर्यसमाजियों से गोराशाही कितनी भयभीत थी, इसके प्रचार का हमें अवसर हाथ लग गया। जिसके कन्धे पर बन्दूक रखकर देश-धर्म शत्रु यह दुष्प्रचार कर रहे थे, वह हमारे आर्यवीरों के अदम्य उत्साह से भयभीत हो गया। हरियाणा सभा के कार्यालय में जाकर उसने लिखित क्षमा माँग कर अपनी भूल स्वीकार कर ली। कमाल की बात तो यह देखी गई कि हरियाणा को आर्यराष्ट्र का नारा देकर बहकाने वाले वेश पन्थी इस षड्यन्त्र की भयानकता को देखकर पता नहीं कहाँ लुक-छुप गये।

गायत्री मन्त्र के ऊटपटाँग अर्थ करके इसे जाटों के नाम पर प्रचारित करने का भी घृणित खेल खेला गया। किसी कल्पित हुड्डा जाट के नाम पर यह निन्दनीय कृत्य किया गया। इसे भी हमारे वीरों ने आँख दिखाकर उसकी बोलती बन्द कर दी। सारे आर्यजगत् को, हरियाणा के आर्यों को और हरियाणा सभा को हम किन शब्दों में बधाई दें! यह भी आनन्ददायक इतिहास है कि इस षड्यन्त्र, वैर-विरोध से टक्कर लेने वाले अभय जी के सब योद्धा जाट परिवारों से ही नहीं थे। श्री अमित शर्मा जैसे आर्यवीरों का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा। श्री विकास आर्य हर मोर्चे में साथ देते ही हैं। आओ विजय पर्व पर गावें-

लहलहाती है खेती दयानन्द की

पटना में आर्यसमाज भवनों का नाम रह गया- हमें यह जानकर बहुत दु:ख हुआ कि गत दिनों पटना में एक गोष्ठी में उर्दू के तीन साहित्यकारों पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इन तीन साहित्यकारों में से एक आर्यसमाजी महाकवि श्री दुर्गासहाय जी सुरूर भी थे। दो साहित्यकारों पर तो बोलने वाले विद्वान् वक्ता मिल गये परन्तु सुरूर जी के जीवन व साहित्य पर बोलने वाला एक भी नहीं था। पटना पूज्य स्वामी अभेदानन्द जी जैसे मूर्धन्य विद्वान् नेता की कर्मभूमि रहा है। वहाँ डी.ए.वी. की संस्थायें बताई जाती हैं। महाकवि सुरूर पर हमारी पुस्तक हृदय की तड़पन गत वर्षों में दूर-दूर तक पहुँच गई। पत्रों में सुरूर जी पर हमारे लेख भी छपते रहे।

लगता है पटना में अब भवन तो आर्यसमाज का नाम लेने को है। भावनाओं का अभाव व अकाल है। जब भावनाशून्य लोग आगे आते हैं तो यही होता है।

इधर देशभर में **'सुरूर जहानाबादी समग्र'** ग्रन्थ की साहित्यिक जगत् में ऐसी धूम मची है कि देशभर के उर्दू साहित्यकार ग्रन्थ के परोपकारी, मिशनरी प्रकाशक श्री जितेन्द्र कुमार गुप्त बठिण्डा से इसकी एक-एक प्रति माँग रहे हैं। इस ग्रन्थ को डॉ. अलिफ़ नाज़िम जी ने संग्रहीत व

सम्पादित करके देवनागरी में तैयार करने में भारी श्रम किया है। हम पटना के आर्यसामाजिक भवनों के भावनाशून्य स्वामियों को क्या कहें? क्या वे वहाँ जाकर सुरूर जी के जीवन व साहित्य पर कुछ भी कहने की योग्यता नहीं रखते थे? साठ वर्ष पहले तक आर्यसमाज के दीवाने आर्यसमाज का दृष्टिकोण रखने के लिये प्रत्येक अवसर का लाभ उठाने पहुँच जाते थे। अब तो संगठन को ही पक्षाघात का रोग हो गया है।

यह अपने आप में इतिहास है- डी.ए.वी. स्कूलों, संस्थाओं में एक भी नामधारी आर्य वक्ता नहीं यह इस घटना से प्रमाणित हो गया। हम पक्के भवनों के कच्चे संचालकों व मालिकों से क्या आशा कर सकते हैं? हमारे लिये हर्ष व गौरव का विषय तो यह है कि देश भर में पाँच रिसर्च स्कॉलर महाकवि सुरूर पर पीएच. डी. कर रहे हैं। यह अपने आप में एक इतिहास है। इससे पहले किसी आर्यसमाजी नेता, विद्वान्, कवि और साहित्यकार पर एक साथ पाँच जनों ने पीएच.डी. किया हो तो बतावें।

आग्नेय सुरूर- 'सुरूर' महाकवि वह आग्नेय पुरुष था जो लाला लाजपतराय से माण्डले के दुर्ग में मिलने बर्मा पहुँच गया। आर्थिक कंगाली से जूझ रहे सुरूर जी को मार्गव्यय मेरठ में किसने दिया? यह बताने वाला कोई नहीं। हमने सुरूर समग्र में माण्डले में लाला जी पर रची गई उनकी दुर्लभ कविता तो छपवा दी। उसकी पर्याप्त चर्चा भी कर दी परन्तु, पटना के निर्दयी संस्थावादी आर्यसमाजी वहाँ गोष्ठी में जाकर उन पर चार शब्द न कह सके। जिसने दलितोद्धार, विधवा, अनाथ और गऊ के दुखड़े को उस युग में अपना मुख्य विषय बनाकर आर्यसमाज का सिर ऊँचा कर दिया।

मूक प्राणियों पर दया के भाव को जगाने वाली उसकी रचनायें पढ़कर हम अपने बाल्यकाल में रो पड़ते थे। प्राणी मात्र के उस रक्षक का, स्वराज्य संग्राम के एक दिलजले आर्य कवि पर बोलने के लिए एक भी वक्ता न मिला! यह कैसी दिल दुखाने वाली कहानी है? और इधर बठिण्डा के भावनाशील, धर्मानुरागी, आर्यसाहित्य अनुरागी श्री जितेन्द्र जी गुप्त का उत्साह व त्याग देखें जिन्होंने 'सुरूर समग्र' नाम का ८२४ पृष्ठों का विशालकाय ग्रन्थ बढ़िया काग़ज पर छपवाने के लिये लाखों रुपये लगाकर धर्मानुराग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिस कार्य को कोई सभा संस्था करने का साहस न बटोर सकी, सुरूर जी के निधन के एक सौ दस वर्ष बाद सम्पन्न करवाकर सिद्ध कर दिया कि पं. लेखराम के वंश में आज भी ऐसे-ऐसे समर्पित सेवक हैं। हम फिर बता दें कि आर्यसमाज के १४५ वर्ष के इतिहास में पहली बार एक देशभक्त मुसलमान द्वारा सम्पादित इतना बड़ा ग्रन्थ श्री जितेन्द्र कुमार जी को प्रकाशित करवाने का श्रेय प्राप्त हुआ है। सभायें, समाजें, विद्वान्, लेखक, गवेषक साहित्यकार इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रसार में क्या सहयोग करते हैं? यह पता भी शीघ्र चल जावेगा।

इस ग्रन्थ में है क्या-क्या?- सुरूर जी पर भूलचूक से लिखने वालों ने यदि कभी कुछ लिखा भी तो 'आर्यसमाचार' मेरठ, आर्य मुसाफ़िर और आर्यगज़ट आदि पत्रों का उल्लेख कोई नहीं करता था। अब इमने इन पत्रों में छपी उच्च कोटि की रचनायें उपलब्ध करवाकर इन पत्रों को भी अमर कर दिया है। जब हमने सुरूर जी पर अभियान छेड़ा तो उत्तराखण्ड के आर्यसमाजों, वहाँ की सभा को कई पत्र लिखे। सुरूर जी की समाज-सेवा की सामग्री माँगी। किसी ने भी पत्र का उत्तर तक न दिया। ग्रन्थ में कई फोटो छपे हैं परन्तु, सुरूर जी के प्यारे जहानाबाद आर्यसमाज (जिसके मन्त्री रहे) का चित्र नहीं दिया जा सका। दोष किसका? अब इस आयु में मेरे लिये ऐसी यात्रायें करना सम्भव नहीं। समाजियों में तड़प नहीं। उन्हें महासम्मलेनों में रुचि है।

सज्जनो! इस ग्रन्थ में सबसे पहले एकेश्वरवाद पर उनकी एक रचना दी गई है। वेदवाणी पर उनकी रचना हमें सारी याद न रही। डॉ. अलिफ़ नाज़िम जी ने आप खोज ली। ऋषि दयानन्द पर बहुत मीठी सुरीली कविता दी गई है। सुरूर जी की इस रचना से इसके छन्द को लोकप्रियता मिली। श्री 'पं. लेखराम की चिता' लम्बी कविता इसमें मिलेगी। लोकमान्य तिलक आदि कई देशभक्तों और नेताओं पर, श्रीराम, माता सीता, स्वामी रामतीर्थ पर भावपूर्ण हृदयस्पर्शी रचनायें आप इसमें पायेंगे।

मातृभूमि सुरूर जी का प्रिय विषय था। देश का उत्थान, कृषकों का कल्याण आदि विषयों पर अनूठी रचनाओं का यह संग्रह लोकप्रिय बनाना हमारा कर्त्तव्य है। कठिन उर्दू फ़ारसी शब्दों के पाद टिप्पणी में अर्थ दिये गये हैं। सुरूर जी के जीवन पर सम्पादक ने तथा इस लेखक ने पर्याप्त मौलिक व खोजपूर्ण सामग्री दी है।

ऐतिहासिक कलम से....

आर्यावर्त देशीय मत-मतान्तर समीक्षा
(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)
विहंगावलोकन !

श्री मदनमोहन विद्यासागर

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

युगप्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम दस समुल्लासों में वैदिक धर्म के अनुसार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का तथा राजनीति, ईश्वर, वेद, मोक्ष और भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन करने के पश्चात् यह आवश्यक समझा कि धर्म के नाम पर जो अधर्म और वेद के नाम पर जो वैदिक मत-मतान्तर देश में फैले हुए हैं उनका खण्डन भी किया जाये।

पहले वैदिक मत का मण्डन फिर अवैदिक मतों का खण्डन यही ऋषि की शैली है । मण्डन जितना आवश्यक है खण्डन उससे कम आवश्यक नहीं। किसी सुन्दर उद्यान के निर्माण के लिए उसमें सुन्दर वृक्षों का आरोपण जितना आवश्यक है, जंगली घास फूस और कंटीली झाड़ियों का उच्छेदन भी उतना ही आवश्यक है।

इसी भावना से ऋषि ने ११ वें समुल्लास में उन सभी मतों का खण्डन किया है जो आस्तिक तो हैं किन्तु वेद विरुद्ध मान्यताओं के पोषक हैं।

ऋषि का उद्देश्य किसी के भी हृदय को चोट पहुँचाना नहीं, प्रत्युत सत्यासत्य का निर्णय कर जनता में नीर-क्षीर विवेक बुद्धि पैदा करना है।

एकादश समुल्लास में वर्णित प्रमुख विषयों पर विद्वानों के लेख आगे दिये जा रहे हैं। यद्यपि ये लेख ऋषि के लेख का स्थान नहीं ले सकते, परन्तु लेखकों ने अपने ढंग से ऋषि के पद-चिह्नों पर चलते हुए उनके सफल मन्तव्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हमें आशा है कि इनके प्रकाश में ग्यारहवें समुल्लास का सत्यार्थ समझने में पाठकों को सुविधा होगी- सम्पादक

युगप्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द द्वारा निर्मित **सत्यार्थप्रकाश** पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। पूर्व के दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और पीछे के चार समुल्लास उत्तरार्द्ध कहाते हैं। पूर्वार्द्ध में 'वेदमत' का स्थापन मण्डनात्मक प्रमाणों और युक्तियों से किया गया है और उत्तरार्द्ध में 'वेदमत' से भिन्न और उसके विरोधी, दोनों प्रकार के मत-मतान्तरों का निराकरण खण्डनात्मक प्रमाणों और युक्तियों से किया गया है।

साधारण तौर पर इसे यों कहा जाता है कि ऋषि ने पूर्वार्द्ध में स्वमत-मण्डन और उत्तरार्द्ध में 'परमत-खण्डन' किया है अर्थात् पहले दश समुल्लास 'मण्डनात्मक' और अन्तिम चार समुल्लास 'खण्डनात्मक' हैं। इसका इतना ही भाव है कि पूर्वार्द्ध का उद्देश्य 'सत्य वेद धर्म' के सिद्धान्तों के स्वरूप का मुख्य रूप से प्रतिपादन है। इसलिये यत्र-तत्र या किसी बात के खण्डन की आवश्यकता पड़ी, तो ऋषि ने वहीं उसका खण्डन भी साथ-साथ कर दिया

है। प्रथम समुल्लास में उदाहरणार्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वर के मुख्य नाम 'ओंकार' के अर्थों का दिग्दर्शन और अन्य सौ नामों की व्याख्या बताई है। साथ ही 'ब्रह्मा-विष्णु-महादेव' इन तीन नामों में 'देवता विशेषों' का तथा अग्नि, वायु आदि शब्दों से, प्रसिद्ध आग, हवा, अर्थों का ही सदा ग्रहण करना चाहिये, इसका खण्डन कर दिया है। ऐसे ही मंगलार्थक 'ओ३म्' और 'अथ' के विधान का अनुमोदन करते हुए, आधुनिक ग्रन्थों में पाये जाने वाले ''श्री गणेशाय नमः... 'नारायणाय नमः' आदि मंगलाचरणों को मिथ्या बताया है, क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता और आर्ष ग्रन्थों में 'ओ३म्' तथा 'अथ' शब्द से ही मंगलाचरण देखने में आता है।

इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में वेदविरोधी मतमतान्तरों का खण्डन करते समय जहाँ आवश्यकता पड़ी वहाँ स्वमत का स्पष्ट स्थापन भी कर दिया है। उदाहरणार्थ एकादश समुल्लास में 'तीर्थ' और 'नाम स्मरण' का विषय है। ऋषि ने काशी आदि तीर्थों के माहात्म्य का खण्डन किया है और फिर सच्चे तीर्थों का सत् स्वरूप बताया है। वहाँ लिखा है कि ''वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, सत्याचरण, ब्रह्मचर्य, आचार्य-अतिथि-माता-पिता की सेवा, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ कर्म दुःखों से तारनेवाले होने से 'तीर्थ' हैं। जो स्थान विशेष, जल या स्थलमय हैं, वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते।'' ऐसे ही नाम स्मरण का विषय है। अवैदिक नामों और उनको अवैदिक नाम स्मरण की पद्धति का खण्डन करके वहीं वेदोक्त नाम स्मरण की रीति बतला दी है कि ''जैसे 'न्यायकारी', यह ईश्वर का एक नाम है, जिसका अर्थ है न्याय करने वाला। जैसे परमात्मा पक्षपात-रहित होकर सबका यथावत् न्याय करता है, वैसे उसको ग्रहण करके सबसे न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है।''

इस प्रकार ज्ञात होता है कि स्वमत स्थापक पूर्वार्द्ध में भी यत्र-तत्र 'खण्डन' है और पर मतोन्मूलक उत्तरार्द्ध में यत्र तत्र 'मण्डन' है।

मण्डन-खण्डन का प्रयोजन - वेदमत के स्थापन=पुनरुद्धार=मण्डन का ''मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है, उसको सत्य और जो मिथ्या है, उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना।... जो पदार्थ, मत, सिद्धान्त जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।... मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य (मतों, सिद्धान्तों, विषयों) का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन (=स्वार्थ) की सिद्धि (के निमित्त) दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।''...''इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि'' करना इसका तात्पर्य है। इसका प्रयोजन यही है कि-जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को (सब) मनुष्य जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें।' ...ऐसी बातों को चित्त में धर कर ऋषि ने ''सत्यार्थप्रकाश'' को रचा है।

पूर्वार्द्ध के दस सम्मुलासों में ''विशेष खण्डन-मण्डन'' (अर्थात् तर्क-वितर्क) इसलिये नहीं लिखा है कि जब तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य नहीं बढ़ाते, तब तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों (=गहरी निषेधात्मक समालोचना) के अभिप्राय को नहीं समझ सकते। इसलिये प्रथम (पूर्वार्द्ध में) सबको सत्य-शिक्षा का उपदेश (अर्थात् वेदमत का मण्डन) करके उत्तरार्द्ध के चार समुल्लासों में विशेष खण्डन-मण्डन किया है। इन चारों में से प्रथम (अर्थात् एकादश) समुल्लास में आर्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरे (१२वें) में जैनियों के, तीसरे (१३वें) में ईसाइयों और चौथे (१४वें)में मुसलमानों के मतमतान्तरों के खण्डन-मण्डन के विषय में'' लिखा गया है।''''और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के अन्त में स्वमत भी दिखलाया'' गया है।

''पाँच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत (संसार में) न था।''...''वेदों की अप्रवृत्ति होने से...मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया, वैसा मत चलाया। उन सब मतों में...वेद

विरुद्ध पुरानी, जैनी (+बौद्ध) किरानी और कुरानी सब मतों के मूल हैं। वे क्रम से एक के पीछे दूसरा, तीसरा, चौथा चला है।...इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा-शाखान्तर रूप मत आर्यावर्त्त देश में चले हैं, उनका संक्षेप से गुण-दोष ११वें समुल्लास में दिखाया'' गया है।

ऋषि दयानन्द ने-जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं,...(वेद-अविरुद्ध होने से) उनका स्वीकार करके, जो-जो मत-मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उनका खण्डन किया है।''

ऋषि दयानन्द ने आर्यवर्त्त देश में उत्पन्न होकर भी, इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का निर्भय हो, पक्षपातशून्य हृदय से, यथातथ्य प्रकाश किया; वैसे ही दूसरे देशस्थ व मतावलम्बियों के मत-मतान्तरों के पाखण्ड की पोल खोली और जैसे स्वदेशवालों की सर्वविध उन्नति के विषय में प्रयत्न किया, वैसे ही विदेशियों के साथ भी।

समालोचना या खण्डन - आजकल 'समन्वयवाद' नाम का बड़ा प्रचार है। 'खण्डन' शब्द कुछ बदनाम है। ऋषि दयानन्द के सब पाखण्डमतों के खण्डन से आजकल के नेता और विचारक घबराते हैं। वे कहते हैं कि 'खण्डन' करके ऋषि दयानन्द ने अच्छा नहीं किया।

सत्य यह है कि 'खण्डन' के अर्थ और उसके प्रयोजन को इन सब लोगों ने ठीक नहीं समझा। वे कहते हैं कि एक को दूसरे की 'समालोचना' करने का हक तो है, पर 'खण्डन' का नहीं। इनके मन में अंग्रेजी के दो शब्द चक्कर काटते रहते हैं; एक है 'क्रिटिसिज्म' और दूसरा है 'कण्डमनेशन'। पहले का अर्थ है किसी सिद्धान्त या मत या वाद की समालोचना करना और दूसरे का भाव है उसकी दूषणा करना या उसका खण्डन करना।

भारत में दार्शनिक सम्प्रदायों में खण्डन-मण्डन हमेशा चलता रहा है। यहाँ खण्डन करने में दो भाव निहित है। यदि कोई सिद्धान्त दोषयुक्त या बुद्धिविरुद्ध है, तो पहला काम है कि हम उसका अच्छी तरह 'विवेचन' करें और फिर जब उसके दोषों का ज्ञान हो जावे, तो उसका 'निराकरण' कर दें। एक सिद्धान्त का विवेचन अर्थात् उसके गुणदोषों की सम्यक् परिशीलना और तदनन्तर सदोष एवं हानिकर पाये जाने पर उस सिद्धान्त का निराकरण या निषेध। इस सारी प्रक्रिया का नाम खण्डन है। क्योंकि यह 'परमत' है, इसलिये स्वीकार्य नहीं, सो इसका 'खण्डन' हो, यह अर्थ खण्डन का नहीं। यही कारण है कि ऋषि ने जिस निर्भयता एवं पक्षपातरहित बुद्धि से विदेशस्थ मतों का खण्डन किया है, उतनी ही निर्भयता एवं पक्षपातशून्य बुद्धि से स्वदेशस्थ पाखण्ड मतों का खण्डन भी किया है।

इसी प्रकार मण्डन का उद्देश्य है। उसमें विवेचन के बाद यदि वह दोषरहित एवं सर्वजनहितकारी है, तो उसका ग्रहण करना चाहिये। मण्डन तभी पूरा होगा, जबकि वह विवेचनापूर्वक हो। ऋषि दयानन्द ने 'वेदमत' का मण्डन इसलिये नहीं किया कि यह स्वदेशस्थ मत है। तीन सहस्र ग्रन्थों तथा इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से जैसा उन्हें बोध हुआ, वैसा पक्षपातरहित मन से निश्चय कर सबके उपकार की भावना से और सबको परस्पर सत्यासत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो, इसलिये 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ द्वारा वेदमत की पुनः स्थापना की।

एकादश समुल्लास : सार - उत्तरार्द्ध के भी दो भाग किये जा सकते हैं। प्रथम के दो अर्थात् ग्यारहवाँ और बारहवाँ सम्मुलास आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए मत-मतान्तरों के वेद-विरुद्ध सिद्धान्तों के खण्डन में है; तथा पिछले दो अर्थात् तेरहवाँ और चौदहवाँ समुल्लास भारतेतर देशों में प्रसिद्ध ईसाई और मुसलमानी मतों के समालोचनात्मक खण्डन में हैं।

इनमें भी जो ग्यारहवाँ समुल्लास है, वह विशेष महत्त्व रखता है इसका सार यों है-

१. पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई मत भूमण्डल पर नहीं था।

२. सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य भूमण्डल पर था अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था।

३. महाभारत युद्ध के कारण सर्वत्र 'वेदों की अप्रवृत्ति' हो गई। इनकी अप्रवृत्ति से भूगोल में अविद्यान्धकार छा गया। जिससे मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया उसने वैसा मत चला दिया।

४. इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा-शाखान्तररूप मत आयावर्त्त देश में चले हैं, उनमें मुख्य रूप से चार्वाक

और वाममार्गी हैं। ये नास्तिक मत हैं।

५. इनके बाद शैव, वैष्णव आदि मतों ने अपना जाल फैलाया। ये सब आस्तिक मत हैं, परन्तु इन मतों में वेदोक्त ईश्वर का सच्चा स्वरूप बदल गया और भिन्न-भिन्न देवों को अपना इष्टदेव माना जाने लगा। वेद के स्थान पर पुराणों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। ईश्वर-पूजा की जगह गुरुपूजा, अष्टांग-योग व पंचमहायज्ञों के स्थान पर नाम-स्मरण, तीर्थ-माहात्म्य चल पड़े।

६. इसी समय जैन (+बौद्ध) मत चल पड़ा। जैनियों ने मूर्तिपूजा चलाई। शैव और वैष्णवादि मत यद्यपि सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर को मानते थे, तथापि उनके प्रचार के साथ-साथ नास्तिक मत का प्रचार भी जोर पर था। नास्तिकता के प्रचार को जैन मत के कारण बहुत प्राबल्य मिला।

७. उस समय शैव, वैष्णव मत वालों ने जैनों के प्रभाव से जनसाधारण को बचाने के लिये स्वयं भी नाना देवों की मूर्तियों की स्थापना की और बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये और अपना पाखण्ड जाल फैलाया, पर वे नास्तिकों का मुकाबला न कर सके।

८. इस नास्तिक मत का खण्डन करके द्रविड़ देशोत्पन्न श्री शंकराचार्य ने केवल ब्रह्मवाद अर्थात् अद्वैतवाद का प्रचार किया। नास्तिकों का नारा था-

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

शंकर का नारा था-

ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः

९. शंकराचार्य ने अपने प्रबल तर्क से नास्तिक बौद्धमत का उन्मूलन कर दिया। 'जैन' और 'चार्वाक' मत यद्यपि नास्तिक मत हैं, तथापि क्योंकि ये मूर्तिपूजा के प्रसार के कारण जनसामान्य के हृदय में गड़ गये थे, परिणामतः श्री शंकराचार्य इन मतों को उखाड़ न सके। मूर्तिपूजा और वाममार्ग दोनों अद्वैतवाद के साथ-साथ चलने लगे। अद्वैतवादियों ने मूर्तिपूजा को स्वीकार कर लिया और वाममार्ग हठयोग का परिष्कृत नाम धारण कर पनपता रहा।

१०. इसके साथ-साथ पुराणों का जोर बढ़ने लगा। श्री शंकर ने निस्सन्देह 'वेदमत-स्थापना' का प्रयत्न किया, परन्तु अपने आन्दोलन का आधार 'उपनिषद्, गीता और वेदान्त दर्शन रखा। भारत देश में 'धर्म की व्यवस्था' और 'आचरण' के लिये 'श्रुति' व 'स्मृति' प्रमाण थे। 'ऋग्, यजुः, साम, अथर्व का विरोध चार्वाक और जैन बौद्ध कर रहे थे, सो श्री शंकर ने उन्हें छोड़, उसके स्थान पर 'उपनिषद्' को अपना प्रमाण बनाया। स्मृतियों व पुराणों में वर्णित धर्म के स्वरूप और ब्राह्मण नामधारियों के माहात्म्य से भी प्रजा को विरोध था, सो श्री शंकर ने 'स्मृति' के स्थान पर 'गीता' को ले लिया। विचार-प्रणाली के लिए षड्दर्शनों में से 'वेदान्त' को ले लिया और इस प्रस्थानत्रयी पर अद्वैतवाद=केवल ब्रह्मवाद, का झण्डा खड़ा किया। परिणामतः प्रजा में वेदों की अप्रवृत्ति कुछ बढ़ गई और भारत अन्धन्तम में प्रवेश कर गया। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि शंकराचार्य के आन्दोलन के परिणामस्वरूप भारत में वेदों के प्रति उपेक्षा बढ़ी, वेदों का प्रचलन कम हो गया। इसीलिये उनके पश्चाद्वर्ती श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्व आदि ने भी प्रस्थानत्रयी को ही अपने आन्दोलन का आधार बनाया।

११. नाना मतमतान्तर चल पड़े। मतवादियों ने नाना ग्रन्थ बनाये। गुसाईं मत, रामसनेही आदि मत इसी की उपज हैं।

१२. इसी समय इस्लाम का प्रवेश आर्यावर्त्त में हुआ। इस्लाम ने भारत की हर बात का विरोध किया। उस समय गुरु नानक ने हिन्दू मत की रक्षा का प्रयत्न किया। क्योंकि वे पढ़े-लिखे नहीं थे, परिणामतः श्री शंकर की तरह किन्हीं संस्कृत ग्रन्थों को अपना आधार न बना सके और दादू, कबीर आदि साधु सन्त फकीरों की अपीलिंग वाणियों के द्वारा स्वमत-रक्षण में तत्पर हो गये। उनका एक पृथक् 'सिख-मत' बन गया। एक पृथक् 'गुरुग्रन्थ' चल पड़ा।

१३. उधर सौराष्ट्र-गुजरात की ओर सहजानन्द ने वैष्णवमत एवं वैष्णव आचार को लेकर अपना ही एक नया सम्प्रदाय 'नारायणमत' नाम से प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार राजपूताने में 'रामसनेही' मत का प्रारम्भ हुआ।

१४. १७ वीं शताब्दी में विदेशी योरोपीय जातियों का प्रभुत्व भारत में बढ़ने लगा। उन्होंने ईसाइयत को प्रश्रय दिया। अंग्रेजी भाषा के द्वारा पाश्चात्य विचारों का प्रभाव

बढ़ने लगा। परिणामत: सभी पर नया रंग चढ़ने लगा। इस प्रभाव से पर्याप्त प्रभावित श्री राजाराम मोहन राय ने बंगदेश में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की और भारत देश में नये प्रकार के 'नामरूप' वाले मत व सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। बम्बई में 'प्रार्थना समाज' भी ऐसे ही चला।

१५. महाभारत से श्रीशंकराचार्य तक, यद्यपि धीरे-धीरे वेदों में अप्रवृत्ति रही, परन्तु फिर भी वेद और उसका धर्म ही आर्यजाति के प्रेरक रहे उधर विदेशों में वेदमत का लोप होता रहा। श्री शंकराचार्य से लेकर इस्लाम के आने तक, भारत में 'वेदमत' का नाम रह गया और उसके स्थान पर उपनिषद्, गीता और दर्शनों का प्रभाव बढ़ गया। इस्लाम के प्रवेश से ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव तक, इस बीच के समय में वेद और वैदिक आचारों का प्राय: लोप हो गया, केवल नाम रह गया। इतना ही नहीं, वेद का नाम ले-लेकर मतमतान्तर अलग-अलग राग अलापने लगे। ऐसे समय ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ।

१६. उन्होंने इन सब मतमतान्तरों का खण्डन किया और फिर वेद-व्यास महर्षि की तरह वेदों का पुनरुद्धार किया। आर्यावर्त्तीय पाखण्ड मतों का खण्डन कर, इस देश में पुन: 'वेदमत' का मण्डन किया।

उपसंहार - वेदों का प्रादुर्भाव सृष्टि के आदि में मानव की उत्पत्ति के साथ-साथ हुआ। मानव उत्पत्ति हिमालय के समुन्नत प्रदेश में हुई। इसलिये वेदों का धर्म भी आर्यावर्त्त प्रदेश में जैसे-तैसे चलता रहा। वेद सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की प्रेरणा से सर्गादि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा इन चार ऋषियों के हृदय में अवतरित हुए। इनके आधार पर भारत के 'जीवन' की व्यवस्था हुई। इसके तीन आधारस्तम्भ हैं, ईश्वरीय ज्ञान वेद, वेदानुमोदित ईश्वर की पूजा और वेद प्रतिपादित 'धर्म'।

कालक्रम से तीनों के सम्बन्ध में मतिभ्रम हो गया। वेदों के स्थान पर पुराणादि ग्रन्थ चले, ईश्वर की पूजा के स्थान पर नाना देवी-देवताओं की पूजा चली और वह भी बुद्धि-विरुद्ध तरीके मूर्तिपूजा के रूप में तथा धर्म के स्थान पर तीर्थ-माहात्म्य, श्राद्ध, पशुबलि, पञ्च मकार सेवा, पञ्चायतन सेवा, भस्मलेपन, कण्ठी, रुद्राक्ष माला आदि।

एकादश समुल्लास में जिन मतमतान्तरों का खण्डन किया गया है, उनके खण्डित सिद्धान्तों=निराकृतवादों= परित्याज्य मतों को इन तीनों के अन्तर्गत कर सकते हैं। इनमें 'वेदों' के स्थान पर अनार्ष ग्रन्थों पर विशेष जोर दिया गया है। इनमें ईश्वर के निराकार सच्चे रूप के स्थान पर साकार रूप की पूजा का विधान है। इनमें अष्टांग योग एवं मनुप्रतिपादित दशलक्षण धर्म के स्थान पर हठयोग, झूठे तप, तीर्थ, नामस्मरण, गुरुपूजा आदि को धर्म बताया है।

ऋषि दयानन्द ने इन सबका युक्तियुक्त खण्डन करते हुए सोते आर्यावर्त्तवासियों को जगाया और कहा-

''यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं। इसका नाम सुवर्ण भूमि है। सृष्टि के आदि में (तुम्हारे पूर्वज) आर्य लोग इसी देश में आकर बसे।...''

''सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त (इन) आर्यों का...भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था।...स्वायम्भव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का (यह) चक्रवर्ती राज्य रहा।

''यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब (इस) आर्यावर्त्त देश से ही प्रचारित हुए हैं।...''जितनी विद्या भूगोल में फैली है, वह सब (इस) आर्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रोम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि देश में फैली है।'' जैसी पूरी विद्या (पवित्र भाषा) संस्कृत में है, वैसी (अंग्रेजी आदि) किसी भी भाषा में नहीं।''............ (और) अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्यावर्त्त देश में है, उतना अन्य किसी देश में नहीं।''-परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक (१९वीं शताब्दी तक) भी यह अपनी पूर्व दिशा में नहीं आया।

वेदों की अप्रवृत्ति होने से ही नाना मतमतान्तर और पाखण्ड मत चल पड़े हैं।...पोपों अर्थात् छल-कपट से दूसरों को ठग कर अपना प्रयोजन साधने वालों ने झूठे-झूठे वचन युक्त ग्रन्थ बनाकर उनमें ऋषि मुनियों के नाम धर के उन्हीं के नाम से यह सब वेदविरुद्ध पाखण्ड लीला चलाई है।...जैनियों ने भी वेद का अर्थ न जानकर पोपलीला फैलाई, मूर्तिपूजा चलाई और वेदों की निन्दा की; वेदों के

पठन-पाठन, यज्ञोपवीतादि, ब्रह्मचर्यादि नियमों का नाश किया, जहाँ जितने पुस्तक वेदादि के पाये, नष्ट किए। आर्यों (वेद मतावलम्बियों) पर बहुत सी राजसत्ता भी चलाई, दु:ख दिया।

''ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त्त में जैनों का राज्य रहा (आर्यावर्त्तवासी) प्राय: वेदार्थ ज्ञान से शून्य हो गये। इस बात को अनुमान से (आज २० वीं सदी से) अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे।''

''तब से आर्यावर्त्त देश की जो दशा बिगड़ी, वह सुधरी नहीं।''

''जो बाल्यावस्था में एक-सी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि धर्म का त्याग करें, तो एकमत अवश्य हो जाय।...जब सब विद्वान् एक सा उपदेश करें, तो एकमत होने में कुछ भी विलम्ब न हो।''''यह...सब विद्वानों और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य (वेदमत) का मण्डन, असत्य (वेदविरुद्ध चार्वाक, शैव, वैष्णव, गुसाईं, कबीरपन्थ, सिक्खमत, प्रार्थनासमाज, ब्राह्मण समाज, आदि-आदि) का खण्डन पढ़ा-सुनाके सत्योपदेश से (सब संसार को) उपकार पहुँचाना चाहिये।''

देखो! तुम्हारे सामने अब इस बीसवीं सदी में भी पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं। अब भी ईसाई, मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुमसे (भारतीय आर्यों) अपने घर की दशा और दूसरों को अपने मत में मिलाना नहीं बन सकता।...

''इसलिये जो उन्नति करना चाहो, तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्‌देश्यानुसार आचरण करो। जैसा आर्यसमाज देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं। (व्य. भा.)

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव (जन्माष्टमी) १२ अगस्त पर विशेष...

श्रीकृष्ण- भगवान् अथवा योगेश्वर?

सोमेश 'पाठक'

लहलहाती फसल पर ज्यों ओले गिर पड़े हों। कुछ ऐसा ही हाल इस आर्यावर्त का मूर्तिपूजा ने कर डाला। जहाँ के राजे-महाराजे पूरी पृथ्वी पर शासन करते थे, आज उन्हीं की सन्तानें मन्दिरों की घण्टियाँ बजा रही हैं। जहाँ के ऋषियों ने सारे संसार को पढ़ना-लिखना सिखाया,[१] आज उन्हीं के वंशज अपने पूर्वजों की खिल्लियाँ उड़वाते हुये तनिक लज्जा का भी अनुभव नहीं करते। मैं समझता हूँ कि जहाँ मूर्तिपूजा ने एक ओर हमारे धर्म, सभ्यता, संस्कृति और नस्ल में घुन लगा रखा है वहीं दूसरी ओर हमारे महापुरुषों के जीवन और हमारे गौरवशाली इतिहास को विकृत करने में भी कसर नहीं छोड़ी है। ब्रह्म को जमीन पर ला पटकने वाले हमारे अवतारवादियों ने अपने ही पूर्वजों का ऐसा मुखौल उड़ाया है जिसे लेखनी लिखने में शर्म अनुभव करती है। इस घृणित मजाक का सबसे बड़ा शिकार बने हैं योगेश्वर श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण के जीवन पर जो सबसे बड़ा लांछन लगाया गया है वह है उनका '**ईश्वर होना**'। बाकी के सारे लांछन इस एक लांछन पर ही आश्रित हैं। किसी भी महापुरुष का ईश्वर माना जाना उस महापुरुष का सबसे बड़ा अपमान होता है। ईश्वर हो जाने के बाद फिर उस महापुरुष की विशेषता ही क्या है? उसका बड़प्पन ही क्या है? जो है सब ईश्वर का है। क्या किसी मनुष्य के अस्तित्व को नष्ट करना हत्या नहीं होती? क्या हम श्रीकृष्ण के हत्यारे नहीं है? अगर नहीं, तो फिर हत्या की परिभाषा क्या है? ऐ अभागे आर्यावर्त! तेरी बदकिस्मती पे रोना आता है। हज़ार वर्ष की गुलामी से पीड़ित होने के बाद भी तेरी सन्तति अब भी अपने लिये केवल खाई ही खोद रही है। ऋषि दयानन्द ने उसे चेताया था। पर दुर्भाग्य कि उसके कान पर जूँ तक न रेंगी। सदियों से सुप्त पड़ी आर्यावर्तीय चेतना को ऋषि ने जगाने की चेष्टा की। चेतना ने ठीक से आखें भी न खोलीं थी कि करवट[२] ली और फिर चादर तान ली। शायद आर्यावर्तीय सन्तति ने ऋषि की चेतावनी[३] को गम्भीरता से नहीं लिया है। ऐ बेहोश आर्यावर्त! अब भी समय है जाग! जाग, नहीं तो महाविनाश तेरी प्रतीक्षा कर रहा है और तू उसके बिल्कुल नजदीक पहुँच चुका है।

पुराणों का रासरचैया- अठारह में से लगभग नौ पुराणों[४] में श्रीकृष्ण के जीवन का वर्णन मिलता है और अगर हरिवंश[५] को भी जोड़ दो तो यह संख्या दश हो जाती है। उनमें से भी जिनमें विस्तारपूर्वक मिलता है वे हैं विष्णु पुराण, ब्रह्मपुराण, भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और हरिवंश। ऐसा कहा जाता है कि सारे पुराण महर्षि वेदव्यास[६] ने रचे हैं। पर सत्य यह है कि एक भी नहीं रचा। यह निश्चय किया जा चुका है कि काल की दृष्टि से सारे पुराण भिन्न-भिन्न समय में रचे गये हैं और विषय की दृष्टि से भी एक पुराण दूसरे पुराण का विरोध करता ही नजर आता है। अत: यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पुराण न तो किसी एक व्यक्ति की रचना ही हैं और न किसी ऋषि की। ये अनेकों संस्कृत कवियों द्वारा पिछले दो-ढाई हजार वर्षों के अन्तराल में समय-समय पर रचे गये हैं और महर्षि व्यास के नाम पर मढ़े गये हैं। इनकी वास्तविकता 'सत्यार्थप्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास में देखी जा सकती है। इसलिये ये समस्त पुराण न केवल अप्रमाणिक ही हैं अपितु इनसे होने वाली हानि को देखते हुये ये सर्वथा त्याज्य भी हैं। आजकल श्रीकृष्ण को लेकर जो कथायें प्रचलित हो गयीं हैं उनका आधार ये ही पुराण हैं जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण लगभग एक जैसी ही बात करते हैं। इनके श्लोक भी लगभग एक जैसे ही हैं। अब किसने किसकी चोरी की है? यह शोध का विषय है। ये पुराण श्रीकृष्ण को भगवान बनाने का मसाला तैयार करते हैं। भागवत पुराण इससे दो कदम आगे निकल जाता है और भगवान बनाने के चक्कर में उन्हें सड़कछाप मनचला बना देता है। और इतना ही नहीं वह इसी स्वरूप की लीला अथवा लीला के इसी स्वरूप में साक्षात ब्रह्म के दर्शन भी करा देता है। बचा

ब्रह्मवैवर्त पुराण? तो इसके विषय में कुछ ना ही कहा जाये तो ज्यादा अच्छा है। मारे अश्लीलता के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। उसे इसी में ही फिलॉसफी दिखी है। इसे अपने जमाने का 'ओशो' कहा जा सकता है। इन पुराणों से जो कसर छूट गयी है वह हरिवंश ने पूरी कर डाली है। पं. जयदेव का 'गीतगोविन्द' खास तौर से ब्रह्मवैवर्तपुराण और हरिवंश के आधार पर ही लिखा गया।

सार-रूप में कहा जाय तो इन सब ग्रन्थों में वे ही घिसीपिटी कहानियाँ भरी पड़ी हैं जो कि हम लोग सिनेमा में अक्सर देखते रहते हैं। वही पृथ्वीलोक अपने दु:खों से पीड़ित होकर देवताओं की शरण में जाता है। एक अवतार ऑर्डर करता है। शिव और विष्णु की ये ड्यूटी लगा रखी है कि तुम समय-समय पर पृथ्वीलोक को अवतार डिलीवर कराओ। अवतार समय पर पहुँच जाता है और जादूगर के से खेल दिखाता है। फिर श्रीमती आकाशवाणी जी की ड्यूटी लगती है कि तुम समय-समय पर दुश्मनों को सचेत करती रहो। फिर आदरणीय नारद जी भी अपनी पॉलिटिक्स में सक्रिय हो जाते हैं। अवतार अपने काम बखूबी कर ही रहा होता है। कभी पहाड़ों जैसे स्तनों वाली पूतना[७] को दूध पीकर मार डालता है। कभी लात मारके बैलगाड़ी उड़ा देता है। कभी मुँह खोल के ब्रह्माण्ड दिखा देता है। कभी सात फन वाले नाग पे चढ़के वंशी बजाता है। कभी उँगली पर पहाड़ उठा लेता है तो कभी नदी किनारे रास रचाता है। क्योंकि ये सब न करे तो भला स्वर्गलोक से आया भगवान कैसे सिद्ध हो? (माफ करना ये वाला तो बैकुण्ठ लोक से था।)

पुराणों की इन कहानियों का आधार है उस समय की जनश्रुतियाँ, संस्कृत कवियों की कल्पनायें और कुछ धूर्तों की धूर्तता। जनश्रुतियाँ मैंने इसलिये कहा है कि हो सकता है कुछ कहानियाँ वास्तव में भी घटी हों। पर जिस तरह का अलौकिक वर्णन पुराणों में वर्णित है ऐसे तो बिल्कुल नहीं घटी होंगी। पूत के पाँव पालने में दीखने लगते होंगे, पर असल में पता तब चलता है जब पूत कुछ अनूठा कर दिखाये। इसलिये अधिकतर महापुरुषों के बाल्यजीवन की साधारण से साधारण घटनायें भी चमत्कारिक दीख पड़ती हैं। ऐसा इसलिये नहीं होता कि वे घटनायें चमत्कार थीं बल्कि इसलिये होता है कि उन पर मिर्च-मसाला पर्याप्त लग चुका है। सम्भव है कि श्रीकृष्ण के विषय में भी ऐसा ही हुआ हो, क्योंकि श्रीकृष्ण जैसी महान् आत्मा के विषय में पुराणों से पहले जनश्रुतियाँ होगीं ही नहीं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इनके अतिरिक्त कुछ कहानियों का आधार महाभारत ग्रन्थ भी बना है और अगर किसी जगह नहीं बन पाया है तो बाकायदा बनाया गया है। कैसे? चलिये देखते हैं-

महाभारत- महाभारत ग्रन्थ की प्रामाणिकता को लेकर अलग-अलग विद्वानों की अलग-अलग सम्मतियाँ हैं। पाश्चात्य विद्वानों में अधिकतर तो इसे एक काल्पनिक नाटक ही समझते हैं। कुछ इसे सत्य तो मानते हैं पर पात्रों को काल्पनिक समझते हैं। पौराणिक विद्वान् इसे पाँचवाँ वेद मानते हैं। उनके अनुसार संसार में ऐसी कोई शिक्षा नहीं जो महाभारत में न पायी जाती हो। कुछ निष्पक्ष विद्वान् इसे सत्य तो मानते हैं पर इसके बड़े भाग को प्रक्षिप्त ठहराते हैं। ऋषिवर दयानन्द की मानें (किसी भी सत्यान्वेषी व्यक्ति के लिये ऋषि को न मानने का न तो कोई कारण है और न विकल्प। क्योंकि अगर निष्पक्षता से देखा जाय तो पिछले ५००० वर्षों में ऋषि से बड़ा सत्यान्वेषी पैदा ही नहीं हुआ।) तो महाभारत केवल दश हजार श्लोकों का ग्रन्थ है। जो कि महर्षि वेदव्यास और उनके शिष्यों ने लिखा है।[८] जिसमें स्वयंभुव मनु से लेकर महाराज युधिष्ठिर तक का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध होता है।[९] जिसके अनुसार श्रीकृष्ण सदाचारी, नीतिज्ञ और धर्मात्मा पुरुष थे। परन्तु आज महाभारत में १ लाख १० हजार श्लोक मिलते हैं। भला १ लाख श्लोक कहाँ से आ गये? तो इसका उत्तर यह है कि ये १ लाख श्लोक महाभारत में प्रक्षिप्त हैं। इतना बड़ा प्रक्षेप संसार के अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। यह महादुर्भाग्य की बात है कि श्रीकृष्ण के बारे में जानकारी देने वाला एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ भी आज प्रक्षेप का समुन्दर बन चुका है। आज इसकी महती आवश्यकता है कि कोई आधिकारिक विद्वान् मनुस्मृति[१०] की भाँति इस ग्रन्थ का भी यह पाप धो डाले। यह काम समय साध्य और श्रम साध्य तो है पर असम्भव नहीं है।

महाभारत में प्रक्षेप का मुख्य कारण पुराण ही है।

पुराणों के गपोड़े सत्य सिद्ध करने के लिये समय-समय पर महाभारत में प्रक्षेप किया गया है। इस प्रक्षेप में सबसे ज्यादा हाथ शैव और वैष्णवों की लड़ाई का है। इन दोनों ने ही श्रीकृष्ण का बँटवारा करने के चक्कर में महाभारत में दिल खोलकर श्लोकों की संख्या बढ़ाई है। पर इस लड़ाई में बाजी वैष्णव मार ले गये। इसलिये महाभारत में जहाँ श्रीकृष्ण को शिव से जोड़ा जाता है अथवा शिव का उपासक सिद्ध किया जाता है वह शैवों का प्रक्षेप है और जहाँ विष्णु से जोड़ा जाता है अथवा विष्णु का अवतार सिद्ध किया जाता है वह वैष्णवों का प्रक्षेप है। शैव और वैष्णवों के अतिरिक्त शाक्तों ने भी अपनी कल्पना को अच्छी उड़ान दी है। यह तो हो गयी पण्डितों की बात, इनसे जो बच गया वह सस्ते कवियों ने पूरा कर डाला है। इसलिये महाभारत में पाण्डित्यपूर्ण श्लोक भी हैं और मूर्खतापूर्ण भी। यहाँ पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिये कि यह प्रक्षेप केवल श्रीकृष्ण के विषय में ही नहीं किया गया है, महाभारत के लगभग सारे पात्र इस प्रक्षेप की चपेट में आये हैं। इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दश हजार की संख्या एक लाख दस हजार कैसे हो गयी। इसके अलावा श्रीकृष्ण के विषय में अनेकों कहानियाँ ऐसी भी प्रसिद्ध हुई हैं जिनका महाभारत में नामोनिशान ही नहीं है। खैर जो हो, महाभारत को त्याज्य नहीं कहा जा सकता। अगर सावधानीपूर्वक[११] पढ़ा जाय तो इसी महाभारत से श्रीकृष्ण का ऐसा चरित्र सामने आता है कि जिसे मनुष्यों में आदर्श और आप्त कहा जा सकता है।

गोपियों का कान्हा और राधा का कन्हैया- गोपियों को लेकर जिस तरह की कथायें प्रसिद्ध हो चुकी हैं महाभारत में ऐसा कोई वर्णन नहीं आता। केवल एक जगह श्रीकृष्ण को 'गोपीजनप्रिय'[१२] कहकर सम्बोधित किया गया है। अगर इसे प्रक्षेप न भी मानें तो ऐसा आसानी से समझा जा सकता है कि होनहार बालक पर आस-पड़ोस के महिला-पुरुष प्रेम करने ही लगते हैं, परन्तु वह प्रेम वात्सल्य होता है वासना नहीं। पर यह बात वैष्णव आचार्यों को भला कौन समझाये? उनके लिये तो रासलीला ही असम्प्रज्ञात् समाधि है। उनकी बुद्धि के सारे घोड़े बस इस बात को सिद्ध करने में दौड़े हैं कि कैसे भी श्रीकृष्ण गोपियों के पति बन जायें।[१३] ताकि आत्मा का परम लक्ष्य परमात्मा-प्राप्ति पूरा हो सके। अब इसमें किसी को फिलॉसफी दिखे तो दिख जाय मगर हमें इतिहास नहीं दिखा। गोपियों के बाद अब राधा को देखते हैं। राधा नाम की एक स्त्री का उल्लेख महाभारत में मिलता तो है पर वह कर्ण को पालने वाली एक शूद्र स्त्री है। यह बात सभी जानते हैं। उससे इस राधा का दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं है। इसके अलावा महाभारत में कहीं किसी राधा का कोई उल्लेख नहीं है। महाभारत ही क्या? विष्णु पुराण, हरिवंश और यहाँ तक कि भागवत पुराण में भी राधा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। श्रीकृष्ण के जीवन में राधा का कॉन्सेप्ट सर्वप्रथम ब्रह्मवैवर्त पुराण लेकर आया है। राधा नामक स्त्री ब्रह्मवैवर्तकार के अपने दिमाग की उपज है। इसका इतिहास से कोई लेना-देना नहीं है। ब्रह्मवैवर्त पुराण अधिक से अधिक ३०० साल पुराना है, उससे पहले राधा को कोई जानता तक न था। किसी-किसी स्थल पर इस पुराण ने राधा को श्रीकृष्ण से भी बड़ा माना है। राधा और श्रीकृष्ण के मधुर मिलन में ब्रह्मवैवर्तकार को सांख्य के रहस्य नजर आये हैं। इसके हिसाब से राधा प्रकृति है और श्रीकृष्ण परमात्मा। श्रीकृष्ण ने राधा से ही इस ब्रह्माण्ड की रचना की है। इस विषय को लेकर यह श्रीकृष्ण से लम्बा-चौड़ा उपदेश दिलवाता है।[१४] इसी उपदेश में किसी-किसी जगह यह अद्वैत वेदान्त की भी झलक दिखाता है।[१५] अब ऐसी-ऐसी बेतुकी बातें किसी उपन्यास में तो अच्छी लग सकती हैं, इतिहास में नहीं। अत: यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि जिस राधा को लेकर इतना बखेड़ा खड़ा किया गया है उसका श्रीकृष्ण के जीवन से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। पर विडम्बना देखिये कि पूरे आर्यावर्त में शायद ही कोई मन्दिर ऐसा होगा जिसमें श्रीकृष्ण के साथ राधा नजर न आये। आश्चर्य है कि कपिल, कणाद की सन्तानें मनुष्य को ईश्वर और ईश्वर को आशिक बनाये बैठीं हैं।

सोलह हजार रानियाँ- कृष्ण की रानियों के सम्बन्ध में बड़ा गडबड़झाला है। हरेक ग्रन्थ अपनी अलग ही कथा बाँच रहा है। विष्णु पुराण कहता है कि नरकासुर को मारकर श्रीकृष्ण ने उसके द्वारा बन्दी बनायी हुईं सोलह हजार एक सौ से अधिक लड़कियों को आजाद कराया

और उनसे विवाह कर लिया था।[१६] फिर वही ग्रन्थ दूसरी जगह सात रानियाँ बताता है।[१७] तीसरी जगह सोलह हजार सात बताता है।[१८] चौथी जगह आठ रानियों के नाम गिनाता है।[१९] पाँचवीं जगह जब नाम गिनाता है तो कुछ नाम बदल देता है। एक ही ग्रन्थ में इतना विरोध यह सिद्ध करता है कि सारी बातें गप्प हैं। भागवत और हरिवंश भी नये-नये नाम जोड़ते हैं। अनेकों प्रमाण दिये जा सकते हैं जहाँ श्रीकृष्ण की अनेकों रानियों का वर्णन मिलता है। महाभारत में भी एक स्थल पर श्रीकृष्ण की छ: रानियों का वर्णन मिलता है[२०] पर जहाँ मिलता है वह पूरा पर्व ही प्रक्षिप्त है। इन सब रानियों को जोड़ो तो संख्या का निर्णय कर पाना मुश्किल है। पुराणकारों ने इन असंख्य रानियों से श्रीकृष्ण के १ लाख ८० हजार[२१] पुत्र बताये हैं। (आश्चर्य है कि इतने पुत्रों में कोई पुत्री नहीं हुई।) और श्रीकृष्ण की आयु बताई है १२५ वर्ष। गणित लगाकर देखो तो श्रीकृष्ण के रोज ४-५ पुत्र पैदा होते हैं। वो भी तब जब श्रीकृष्ण पैदा होते ही बच्चे पैदा करने लगे हों और मरते दम तक करते रहे हों। कैसी निर्लज्ज बात है?...

ऊपर जिन रानियों का उल्लेख किया गया है उनमें से केवल एक नाम ऐसा है जो प्राय: हर ग्रन्थ ने स्वीकार किया है वह है रुक्मिणी। अन्य सब नाम विवादास्पद हैं। रुक्मिणी के अतिरिक्त किसी भी रानी के विषय में यह पता नहीं चलता कि श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह क्यों हुआ और कैसे हुआ? न विवाह से पहले का उनका कोई इतिहास है और न बाद का। केवल रानी रुक्मिणी ही ऐसी हैं जिनके पुत्रों का भी इतिहास मिलता है। अन्य किसी रानी के किसी पुत्र का कोई इतिहास नहीं मिलता कि वह कभी किसी कार्यक्षेत्र में आया हो। हाँ कुछ नामों का उल्लेख जरूर मिलता है पर वह बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि ऊपर रानियों का। अत: ऐसा कहने में किसी को संशय न होना चाहिये कि श्रीकृष्ण के केवल एक ही पत्नी थी जिसका नाम था 'रुक्मिणी'।

श्रीमद्भगवद्गीता का परब्रह्म- इसमें सन्देह नहीं कि कुछ बातों को छोड़ दिया जाय तो गीता एक अच्छा ग्रन्थ है। इसकी भाषाशैली और विषय का प्रस्तुतिकरण किसी भी सहृदय पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। पर जिस तरह का परिचय लेकर यह समाज में उपस्थित हुई है वह सन्देहास्पद है। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्मपर्व का एक उपपर्व है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये यह उपदेश दिया था तथा महाभारत का भाग होने की वजह से महर्षि वेदव्यास ने इसे श्लोकबद्ध किया था। यही धारणायें गीता की प्रसिद्धि का कारण हैं और यही धारणायें गीता का दोष भी। गीता न तो कृष्ण का उपदेश है और न व्यास जी की रचना।[२२] पर इन्हीं दोनों धारणाओं की वजह से यह धार्मिक जगत् में इतना आदर पा गयी कि आज वह हिन्दुओं का धार्मिक ग्रन्थ बनी बैठी है। संसार में गीता जितनी टीकायें किसी ग्रन्थ की नहीं हुई। सबने अपने-अपने सिद्धान्तों की पुष्टि गीता से की है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्क आदि बड़े-बड़े-बड़े सम्प्रदायों का आधार गीता ही बनी है। गीता अपने सिद्धान्तों के कारण प्रसिद्ध नहीं हुई वह ईश्वर का उपदेश है, इस कारण प्रसिद्ध हुई। गीता के प्रति इसी धारणा ने आर्यावर्त का बड़ा अनिष्ट किया है। वेदादि सत्य शास्त्रों की उपेक्षा का कारण यह गीता ही है। श्रीकृष्ण को ईश्वर बनाने का एक बड़ा कारण यह गीता ही है। गीता को अगर ईश्वर का उपदेश न माना जाता तो कदाचित् यह इतनी प्रसिद्ध नहीं होती। क्योंकि महाभारत में ही गीता से कहीं अधिक गूढ़ उपदेश भरे पड़े है। जिन्होंने भीष्म और विदुर के उपदेश पढ़े हों वे यह बात आसानी से समझ सकते हैं। सम्भव है कि गीताप्रेमियों को हमारी यह बात उचित न लगे। पर मैं निवेदन करना चाहूँगा कि कोई कारण नहीं कि सम्पूर्ण गीता को कृष्ण का उपदेश और व्यास जी की रचना सिद्ध किया जा सके। अत: श्रीकृष्ण के विषय में गीता से ली गयी जानकारी अप्रामाणिक है। यहाँ पर सन्देह हो सकता है कि गीता की अच्छी बातें तो प्रक्षिप्त नहीं हो सकतीं? तो इसका उत्तर यह है कि प्रक्षेप केवल बुरी बातों का होता है ऐसा कोई नियम नहीं है। अच्छी बातों का प्रक्षेप भी किया जाता है। और फिर गीता में ऐसा एक भी सिद्धान्त नहीं है जो उससे पूर्व के ग्रन्थों में पाया न जाता हो। अत: यह केवल एक अच्छे कवि की रचना है और कुछ नहीं। सम्भव है कि इसका कुछ भाग व्यास जी अथवा उनके

शिष्यों का लिखा हुआ भी हो पर केवल उतना कि जितना एक इतिहास लेखक को लिखना योग्य हो सकता है।

योगेश्वर कृष्ण- महाभारतकार ने श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहा है। श्रीकृष्ण के लिये यह विशेषण सर्वथा उचित जान पड़ता है। यह एक शब्द श्रीकृष्ण के पूरे जीवन की व्याख्या कर देता है। ऋषिवर दयानन्द कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक भी बुरा काम नहीं किया।[२३] यह मानवता की उच्चतम स्थिति है। किशोरावस्था में ही पापी कंस के पहलवानों को मल्लयुद्ध में ही मौत के घाट उतार देना तथा फिर कंस और उसके भाई को भी जान से मार देना यह सिद्ध करता है कि वह शारीरिक रूप से काफी बलिष्ठ थे। यह बल उनके संयम को दर्शाता है। असंयमी व्यक्ति कभी बलिष्ठ नहीं हो सकता। राजा-महाराजाओं से भरी सभा में अधर्मी शिशुपाल को उसके किये का दण्ड दे देना और स्वयं राजा न होते हुये भी एक राजा का सिर धड़ से अलग कर देना इस बात का प्रमाण है कि वह शूरवीर थे। और इतने के बाद भी किसी राजा का उस सभा में चूँ तक न करना यह दर्शाता है कि उस समय के राजा-महाराजा उनका स्थान बहुत ऊँचा मानते थे। इसी सभा में वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ और महावीर पितामह भीष्म ने कहा भी तो था कि आज पृथ्वीतल पर श्रीकृष्ण की कोटि का न तो कोई वीर है और न कोई पण्डित। वे वेद-वेदांगों के ज्ञाता हैं। दान, चतुराई, विद्या, शूरता, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, अनुपम शोभा, धीरज, सन्तोष और पुष्टि आदि सब गुण श्रीकृष्ण में सदा विद्यमान रहते हैं।[२४] गाय आदि पशुओं के प्रति उनका अतिप्रेम उनके गोवर्द्धनधारी होने की सच्ची व्याख्या है। वंशी के प्रति उनका अनुराग उनके हृदय की कोमलता दर्शाता है। जरासन्ध जैसे क्रूर राजा का बिना किसी खूनखराबे के उसके ही घर में जाकर भीम द्वारा वध करा देना, दुर्योधन जैसे दुष्ट और उसके संगी-साथियों को नष्ट करा महाराजा युधिष्ठिर समेत पाँच भाइयों द्वारा आर्यावर्त में धर्मराज्य की स्थापना करना और अपने ही वंश (यादव वंश) के दुराचारी हो जाने पर उसे समूल नष्ट कर देना उनकी राजनीतिज्ञता के अनुपम उदाहरण है। पितामह भीष्म कहते हैं-

सर्वे योगा राजधर्मेषु चोक्ताः। (महाभारत, शान्ति. ६२.३२)

अर्थात् सभी योग राजधर्म में कहे गये हैं। यही राजधर्म श्रीकृष्ण का 'योग' है और इसी के वे 'ईश्वर' हैं।

टिप्पणी

१. एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (विशुद्ध मनुस्मृति १.७४)

२. आर्यसमाज का प्रारम्भिक इतिहास ही वह करवट है।

३. इन्हीं पाषाणादि मूर्तियों के विश्वास से बहुत सी हानि हो गयी। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक-अधिक होती जायेगी।

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृ. सं. ३२२)

४. १. ब्रह्मपुराण २. विष्णुपुराण ३. भागवतपुराण ४. ब्रहमवैवर्तपुराण ५. पद्मपुराण ६. वायुपुराण ७. देवीभागवतपुराण ८. अग्निपुराण ९. लिंगपुराण।

५. यह ग्रन्थ न तो महाभारत का अंग बन पाया और ना ही पुराणों में इसकी गिनती हुई। यद्यपि इसने कोशिश तो दोनों तरफ प्रवेश करने की की है।

६. महर्षि वेदव्यास ने महाभारत नामक इतिहास लिखा है और पुराण इतिहास को भी कहते हैं। इस दृष्टि से महर्षि वेदव्यास को पुराण का रचयिता कहा जाये तो कोई आपत्ति नहीं।

७. आयुर्वेद के जानने वाले जानते होंगे कि पूतना एक बच्चों का रोग है जिसमें बच्चा माँ के स्तनों से द्वेष करने लगता है अर्थात् दूध नहीं पीता। अगर वह ठीक से (जोर से) दूध पीले तो पूतना रोग ठीक हो जाता है।

...कुमारस्तृष्णालुर्भवति च पूतना गृहीतः।

यो द्वेष्टि स्तनम्...। (सुश्रुत संहिता, उत्तर तन्त्र अ. २७, श्लोक-१०-११)

८. यह बात राजा भोज के बनाये 'संजीवनी' नामक इतिहास में लिखी है, जो कि ग्वालियर के राजा 'भिण्ड' नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्त्र

चार सौ और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्त्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्त्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था, वह विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्त्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्त्र श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है, जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊँट का बोझा हो जायेगा। (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

९. और श्रीमान् महाराजे 'स्वायंभुव मनु जी' से लेके महाराज युधिष्ठिर तक का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है।

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास पृष्ठ ३६२)

१०. मनुस्मृति, अनुसन्धानकर्त्ता- डॉ. सुरेन्द्र कुमार

११. प्रक्षेप को समझते हुए।

१२. आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः।

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रियः। (महाभारत सभापर्व, ६७.४१)

१३. दृष्टव्य- (विष्णुपुराण, पञ्चमांश अ.-१३ तथा हरिवंश अ. ७७)

१४. ममाद्धांश स्वरूपा त्वं मूल प्रकृतिरीश्वरी। (ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड अ. १५, श्लोक ६७)

कुलालः स्वर्ण कादश्च नहि शक्तः कदाचन।

तथा त्वया विना सृष्टिं नच कर्तुमहं क्षमः।। (वही, श्लोक ५९)

१५. यथा त्वं च तथाऽहं च समौ प्रकृति पूरुषौ।

नहि सृष्टिर्भवेद्देविद्वयोरेकतरं बिना।। (वही, अ. ६७)

१६. कन्याश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहीन्। (विष्णुपुराण, ५.३१,१५)

षोडस्त्री सहस्त्राणि शतमेकं ततोधिकम्।

तावन्ति यक्रे रूपाणि भगवान मधुसूदन।। (विष्णुपुराण ५.३१.१८)

भगवतोऽप्यत्र वर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडश सहस्त्राण्येकोत्तरशताधिकानि भार्याणामभवन्। (विष्णुपुराण ४.१५.३४)

१७. अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवः सप्तशोभनाः। (विष्णुपुराण ५.२८.३)

१८. षोडशासन् सहस्त्राणि स्त्रीणामन्याति चक्रिणः (विष्णुपुराण ५.२८.५)

१९. कालिन्दी मित्रवृन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा।

देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी।।

मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीलमण्डना।

सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी।। (विष्णुपुराण, पञ्चमांश, अ. २८)

२०. रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैव्या हैमवतीत्यपि।

देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम्।। (महा. भा. मौसल पर्व, अ. ७)

२१. तासु चाष्टावयुतानि लक्षं च पुत्राणां भगवानखिलमूर्तिरनादिमानजनयत्। (विष्णुपुराण, ४.१५.३६)

२२. यह विषय अपनी व्याख्या के लिये एक भिन्न लेख की अपेक्षा रखता है, अतः आगे कभी लिखा जायेगा।

२३. देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण= बुरा काम श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त किया हो, ऐसा नहीं लिखा। (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समु. पृ.स. ३१०)

२४. वेदवेदांग विज्ञानं बले चाप्यधिकं तथा।

नृणां लोके हि कोऽन्योस्ति विशिष्टः केशवादृते।।

दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।

सन्नतिः श्रीधृतिष्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।।

(महाभारत सभा. ३८.१९-२०)

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (स.प्र. स. ३)

विद्याप्राप्ति का काल- श्रावणी पर्व

सुशीला भगत

अष्टाध्यायी महाभाष्य के रचयिता महामुनि पतञ्जलि अपने ग्रन्थ में विद्योपयोग के चार भेद बताते हुए लिखते हैं-

चतुर्भिश्च प्रकारैः विद्या उपयुक्ता भवति-आगमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेन।

अर्थात् ज्ञान की निम्न चार विधाओं के आश्रय से उसकी उपयोगिता, सार्थकता एवं परिपूर्णता सम्भव है। ज्ञान का प्रथम काल **आगमकाल** कहलाता है। इसमें विद्यार्थी गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक विद्या को ग्रहण करता है। ज्ञानी जन से सत्-ज्ञान का नियमपूर्वक ग्रहण किये बिना विद्या के अगले कालों में प्रवेश असम्भव है।

दूसरा काल **स्वाध्याय-काल** है इसमें गुरुजनों द्वारा दिये गए ज्ञान का स्वतः चिन्तन-मनन द्वारा विकसित कर अन्तरात्मा में आत्मसात् किया जाता है। विद्या का तीसरा काल **प्रवचन काल** के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अपने चिन्तन-मनन द्वारा परिमार्जित एवं पुष्ट करके लोक में जन सामान्य के मध्य में प्रचार एवं प्रसार किया जाता है। यही **प्रवचन-काल** है। प्रवचन से विद्या की वृद्धि तथा अविद्या का ह्रास होता है। जनता का कल्याण एवं प्रवक्ता का अभ्युदय होता है।

आजकल हमारे समाज में जन-जागरण की अत्यन्त आवश्यकता है। राष्ट्र में चारों ओर अविद्या का अन्धकार फैला हुआ है। चारों ओर विभिन्न मत-मतान्तरों एवं अनेक प्रकार के पाखण्डों का जाल फैलता जा रहा है। ऐसे समय में हमें स्वामी दयानन्द के सन्देश को घर-घर पहुँचाने की आवश्यकता है। वेदों की पवित्र ऋचाओं का सन्देश विश्व को देना है। यह सब प्रचार एवं प्रवचन से ही सम्भव है।

श्रावणी पर्व हमें अपने स्वाध्याय एवं विद्याप्राप्ति की याद दिलाता है। परन्तु दोष तो यह है कि हमारा आगम काल ही ठीक नहीं है तो फिर आगे आने वाले काल कैसे ठीक होंगे। हमारे विद्यार्थियों को यदि आगमकाल में ही सत्य विद्या का उपदेश देकर शिक्षित बनाया जाये तो वे निश्चित ही अपने अगले दोनों काल भी स्वयमेव ठीक कर लेंगे। विद्यारम्भ के समय में विद्यार्थियों को गुणवान्, धार्मिक तथा अच्छे संस्कारों से युक्त शिक्षा प्रदान करनी चाहिये जिससे वे श्रेष्ठ गुणों से युक्त, संस्कारवान, आज्ञापालक बन सकें। आज नैतिक शिक्षा के अभाव में बच्चों के अन्दर अच्छे गुणों का अभाव है। आज जो भी बुराइयाँ, अत्याचार, अनाचार आदि बढ़ रहे हैं उन सभी के पीछे अच्छे गुणों का अभाव, अच्छी शिक्षा का अभाव मूल कारण है। आज बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है जिससे वे अच्छी नौकरी, अच्छा पद प्राप्त करके ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत कर सकें। ऐसी शिक्षा प्राप्त करके वे अच्छे पद को प्राप्त तो कर लेते हैं, सुख के साधनों को भी प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु अच्छे गुणों के अभाव के कारण, अच्छी गुणों से युक्त शिक्षा के अभाव में वे माता-पिता के प्रति, समाज व राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं कर पाते और उस धन को विषय भोगों में तथा बुरे कार्यों में नष्ट कर देते हैं।

स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् यह उपदेश हमें बार-बार दिया जाता है। श्रावणी पर्व इस उपदेश का ही स्मारक पर्व है। वेद ज्ञान के निरन्तर प्रवचन से ही इस विश्व का कल्याण है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है-

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः।
अर्थं ह्यस्य तरणि।।

अर्थात् सबकी उन्नति करनेवाला वह परमात्मा ध्यान से ही चिताया जाता है। वह संसार यज्ञ का पूर्व से ही वर्तमान केतु है। इसकी प्राप्ति या वेदार्थज्ञान वास्तव में संसार सागर से तरणि अर्थात् तारक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वेद का ज्ञान संसार के लिए अमृत के समान लाभदायक एवं सुखप्रद है। अतएव हमें इस अवसर पर यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम अपने स्वाध्याय-काल में वृद्धि करेंगे। इसके द्वारा अपने ज्ञान का सर्वांगीण विकास करेंगे तथा वेदों के सन्देश को विश्व के कोने-कोने में अपने प्रवचन-काल द्वारा विस्तृत करेंगे तभी इस पुनीत पर्व की सार्थकता हो सकती है।

विद्या के चौथे काल को महर्षि पतञ्जलि ने **व्यवहार-काल** बताया है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल है। वास्तव में विद्या की वास्तविक उपयोगिता एवं सार्थकता यहीं निर्भर है। यही चरम स्थिति है, जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। मनुष्य चाहे कितना ही ज्ञान प्राप्त कर ले, किन्तु जब तक उसे अपने व्यक्तिगत व्यवहार में लाकर नहीं अपनाता तब तक हमारे पूर्वोक्त तीनों कालों का ज्ञान अधूरा एवं अपूर्ण है। इसके बिना वास्तव में हमारा जीवन ही अपूर्ण है। संस्कृत में एक कहावत है-

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः।
यस्तु क्रियावान् पुरुषः सः विद्वान्।।

अर्थात् शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके भी व्यक्ति तब तक मूर्ख ही है, जब तक वह उसे अपनी क्रिया द्वारा आचरण में नहीं अपना लेवे। ज्ञान द्वारा आचरण करने वाला व्यक्ति ही वास्तव में ज्ञानी और पण्डित है। इसलिए हमें अपना आचरण भी पवित्र वेदानुसार बनाना पड़ेगा- **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः** अर्थात् ज्ञान से युक्त रहने पर भी सदाचरण से रहित मनुष्य को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अतः हमें विद्या की वास्तविक उपयोगिता व्यवहार-काल में ही दिखानी पड़ती है। विद्या की सार्थकता उसके व्यवहार से सिद्ध होती है। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है कि वह भद्र उपदेशों को ग्रहण करे, उसका चिन्तन एवं मनन करे, उसे अपने जीवन में व्यवहार में अपनाए तथा दूसरों को भी उसकी शिक्षा दे। उसके आचरण और व्यवहार को देखकर दूसरे भी उसे शीघ्र अपनाएंगे और वेद-ज्ञान की ज्योति धीरे-धीरे फैलती जायेगी। यही श्रावणी का पवित्रतम सन्देश है। श्रावणी पर्व हमें प्रेरणा देता है कि आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करके अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जलाएँ। श्रावणी का पर्व स्वाध्याय, चिन्तन और मनन का पर्व है। महर्षि दयानन्द के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए हमें वेद की ज्योति को जलाना होगा। वेद सप्ताह मनाकर आर्यजनता को अपने लक्ष्य के प्रति जागरुक करें, स्वाध्याय की ओर प्रेरित करें तभी श्रावणी पर्व सार्थक हो सकता है।

प्रधाना, स्त्री आर्यसमाज मॉडल टाउन, जालन्धर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

वीरों को आज बुलाता हूँ, बल से आवाज लगता हूँ

दूर-दूर तक कहीं किनारा, नहीं दिखायी देता।
सपने सारे टूट चुके हैं अनजाने में-
तुम से क्या कहकर मैं कहूँ कि, ज्योति कहीं से लाओ।
सारे जितने दु:ख हमारे दूर उन्हें कर जाओ।
जीवन का हर पल छलना है, टूट चुका उजियारा,
अन्धकार बढ़ता जाता है, जीवन में बेचारा!
गति सारी ठुकराई जाकर काँप रही है,
स्वप्न बिखर कर चूर-चूर हो बैठे हों क्यों,
प्रश्न अधूरे, सपने पूरे कैसे बोलो हो पाएँगे?
'धर्म' निशा की गहरी घाटी में डूबा है,
'कर्म' स्वार्थ की अँगड़ाई से सिसक रहा है,
दीप बिना बाती के जलकर बुझने वाला है,
'सत्य' सुधा में गरल मिलाकर अन्तिम घड़ियाँ
गिन कर अपनी डूबा डूबा सा फिरता है।
कहाँ 'ज्ञान' की लाली, कहाँ 'शक्ति' की आभा,
कहाँ 'विजय' के स्वर खोये हैं, कहाँ गई है प्रतिभा,
प्रतिमा जन की चकराई सी चक्कर खाकर डोल रही है,
मेरे मन में ज्वार उठा है, दीपशिखा की दीप्ति लुटाकर,
अपने मन की अकथ कथा भी खो बैठी है।
प्राण! कहाँ तुम, अन्तर्मन की गहराई में,
डूब चुका है सारा गौरव काली काली सी घाटी में,
तुम जीवित हो, या स्पन्दन है केवल साँसों में,
अधरों पर मुस्कान तुम्हारी विदा कहाँ पर, कहो हो गई!
तुम-मैं, वे, सब आकुल हैं-पता नहीं है ठौर ठिकाना,
मिलन यामिनी, विरह वेदना लेकर कैसे जाग उठी है?
कुछ तो बोलो, गुण्ठन खोलो, भेद मृत्यु का हम भी जानें,
जीवन और मरण का चक्कर सदा-सदा से चलता आया,
किसने भेद कहो है पाया?
बन्धु हमारे! युग परिवर्तन की आशा में हम जीवित हैं,
सोच रहे हैं सत्य सूर्य का उदय धरा पर कैसे होगा?
नील गगन पर धर्म-ज्योति की आभा कैसे फैल सकेगी?
दूर पार तक ज्ञान-तरंगें कैसे नूतन नृत्य करेंगी?
मेरी उलझन, शाश्वत पथ की दीपशिखा है।
मेरा कम्पन चरण वन्दना युग की सदा करेगा।
तुम सोचो तो, मनुज धरा पर स्वर्ग नहीं ला सकता है क्या?
इस युग को भी सतयुग का सद्रूप नहीं दे सकता है क्या?
बोलो साथी, बोलो भाई, आज सृजन को गति पाने दो,
ध्वंस करो पाषाण खण्ड को, अन्धकार की काली छाया
धूमिल कर दो, भरकर सब में, नयी चेतना,
नये जागरण का बलशाली शंख बजाओ!
मेरे अर्जुन! अब अपना गाण्डीव उठा लो,
चक्र सुदर्शन फिर योगी के सबल हाथ से चलना होगा,
भीम! कहाँ है गदा तुम्हारी, कहाँ तुम्हारा पौरुष खोया,
कौरव दल का अट्टहास सुन तुम भी क्या प्रिय काँप रहे हो?
मेरा राम रावण से डर कर भाग रहा है,
लक्ष्मण आज बंधु के घर में, लुका छिपा सा,
हँस कर डाका डाल रहा है।
सीता की गरिमा बाजारों में बिकने आई।
कैसा युग है, कैसी वीणा, कैसी है रूठी शहनाई?
कायरता आभूषण बनकर आर्यशक्ति को दीन बनाकर,
अट्टहास करती है नागिन, पापों की कटु बीन बजाकर,
मेरा मन गीतों की ध्वनि में जीवन कैसे ला पायेगा,
सब कुछ उलट गया हो जग में, सीधा कौन बना पायेगा,
मेरे मन, प्राण, स्वप्न सब अब भी जाग रहे हैं।
सब कुछ देख रहे हैं, फिर भी उन पर भार नहीं हैं।
गीता के स्वर की विजयवाहिनी अब भी जागृत है।
वेद मन्त्र की पूत ऋचायें, गूँज रही हैं मेरे मन में,
आज बजाता हूँ मैं तुरही, देखूँ कितने वीर बचे हैं,
जो माँ का दुग्धपान कर धर्म-सत्य हित प्राण चढ़ाकर,
स्वयं मिटाकर अपने को, युग की लाज बचा सकते हों।
बजा रहा हूँ शंख कृष्ण का, सोने वाले जागो,
मरना तो होगा सबको ही, रोने वालो जागो।
जागो युग के देव, जागकर नया जागरण मन्त्र गुंजाओ।
नई प्रभा से, नई शक्ति का, मंगल जीवन दीप सजाओ।
जागो, राम-कृष्ण के वंशज, जागो वीर शिवा सन्तान।
जगा रहा है आज प्राण को, प्राणों का प्रेरक भगवान।
नव विहान में, नई भावना, आदि सृष्टि की पुण्य कामना,
जगा रही ऋषियों की वाणी, मन मन्दिर की दिव्य साधना,
सपनों का श्रृंगार करो रे! माँ-जगती को नया रूप दे,
नवयुग के वैदिक मन्त्रों का अब गुंजार करो रे!
बुला रहा हूँ, प्राण शक्ति से, जगा रहा दे जीवन अर्घ्य।
सब कुछ भेंट चढ़ा चरणों में मांग रहा हूँ मैं प्रतिदान।
मनुज मात्र को नवजीवन दो, मत मरने दो-
अन्धकार में, पाप-ताप की काली छाया दूर करो रे।
सत्य उठो रे! धर्म उठो रे!
आर्य उठो रे! पुण्य उठो रे!
जगा रहा हूँ मानव मन को,
बुला रहा हूँ, जीवन बल को,
नयी शक्ति से नव युग के निर्माण हेतु मैं,
बल से आवाज लगाता हूँ!
वीरों को आज बुलाता हूँ !

पं. भारतेन्द्रनाथ

संस्था-समाचार

(१६ से ३१ जुलाई २०२०)

यज्ञ एवं प्रवचन- जैसाकि विदित ही है, ऋषि उद्यान आर्यजगत् के उन स्थलों में से है जहाँ पूरे वर्ष प्रतिदिन दोनों समय यज्ञ किया जाता है, प्रात:काल यज्ञोपरान्त वेद के मन्त्रों का पाठ तथा महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्य का स्वाध्याय किया जाता है और तदनन्तर वेद-प्रवचन, सत्यार्थप्रकाश कथा का आयोजन होता है। रविवार प्रात:काल विशेष यज्ञ किया जाता है, जिसमें नगरनिवासी आर्य सज्जन, माताएं, बहनें और बच्चे सम्मिलित होते हैं तथा अपनी-अपनी आहुतियाँ प्रदान करते हैं। अतिथि यज्ञ के होता के रूप में दान देनेवाले यज्ञमान यदि ऋषि उद्यान में उपस्थित होते हैं तो उनके जन्मदिवस आदि के उपलक्ष्य पर विशेष मन्त्रों से आहुतियाँ भी दिलवायी जाती हैं अथवा यज्ञ उपरान्त अतिथि-यज्ञ के होताओं के लिये आश्रमवासियों की ओर से शुभकामनायें की जाती हैं।

गुरुकुल में आचार्य श्यामलाल जी पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। ऋषि उद्यान गुरुकुल में अभी न्यायदर्शन की कक्षा चल रही है, जिसका विद्यार्थी लाभ ले रहे हैं। रचनानुवाद कौमुदी के पहले एवं दूसरे भाग तथा व्यवहारभानु का भी अध्ययन चल रहा है। कोरोना महामारी के कारण आश्रम में बाहर के लोगों का ऋषि उद्यान में प्रवेश वर्जित है। दिनांक २० जुलाई से वृष्टि-यज्ञ प्रारम्भ हुआ है जो १५ दिनों तक चलेगा।

प्रात:कालीन प्रवचनों में आचार्य घनश्याम जी, आचार्य श्यामलाल जी, आचार्य प्रभाकर जी तथा श्री सोमेश 'पाठक' जी के उद्‌बोधन होते रहते हैं। प्रात:कालीन प्रवचन के क्रम में सत्यार्थप्रकाश की कथा भी चल रही है।

ब्र. हरीश आर्य, गुरुकुल ऋषि उद्यान, अजमेर।

शोक समाचार

गुरुकुल साधु आश्रम महाविद्यालय अलीगढ़ में हिन्दी प्रवक्ता **श्री शिवकुमार शर्मा शास्त्री** का महाविद्यालय जाते समय मार्ग में ही बस दुर्घटना के कारण निधन हो गया। इससे गुरुकुल परिवार एवं आर्यसमाज को अपूर्ण हानि हुई है। भगवान उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे एवं उनके परिवार को इस दु:खद समय में धैर्य प्रदान करे।

परोपकारी परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

राष्ट्रपति द्वारा वेदमन्त्र से शपथ ग्रहण

सूरीनाम के नवनिर्वाचित राष्ट्रपति श्री चन्द्रिकाप्रसाद संतोखी ने वेद को साक्षी मानकर वेदमन्त्र से शपथ ग्रहण की। सूरीनाम में आर्यसमाज का प्रभाव है, इस कारण वेदों का भी वर्चस्व है। इससे यह सहज अनुमान होता है कि आर्यसमाज वेदों को किस दृष्टि से देखता है और किस स्थान पर स्थापित करना चाहता है। गीता, रामायण, महाभारत हमारे नीतिशास्त्र या इतिहास हो सकते हैं, पर इन सबकी शिक्षाओं का मूल स्वत: प्रमाण तो वेद ही हैं। सनातन जगत् को इससे अवश्य शिक्षा लेनी चाहिये।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-सम्पादक**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि ''**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**'' यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३० अप्रैल २०२० तक)

१. श्री पंकज यादव, बीकानेर २. श्री दयालदास आहुजा, रायपुर ३. श्री ओमप्रकाश गोयल, नईदिल्ली ४. श्री अग्निवेश गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर ५. श्रीमती रोशनी देवी आर्य, गुरुग्राम ६. श्री प्रदीप कुमार, गुरुग्राम ७. श्रीमती दीप्ति राजेश धींगड़ा, गुरुग्राम ८. श्री कन्हैयालाल आर्य, गुरुग्राम ९. डॉ. बद्रीप्रसाद पञ्चोली, अजमेर १०. श्री शरद आर्य, मेरठ ११. श्रीमती रीमा आर्य, मेरठ १२. श्री वैदिक आर्य, मेरठ १३. सुश्री वरेण्या, मेरठ १४. श्री अरविन्द सिंह, नई दिल्ली, १५. श्रीमती प्रतिभा, नई दिल्ली १६. श्री आदित्यसिंह, नई दिल्ली १७. सुश्री विदुषी, नई दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३० अप्रैल २०२० तक)

१. श्रीमती चाँद देवी, अजमेर २. श्रीमती मञ्जु आर्य, अजमेर ३. श्री अग्निवेश गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर ४. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली ५. श्री सुदर्शन सुखीजा, गुरुग्राम ६. श्री सुभाष कालड़ा, गुरुग्राम ७. डॉ. बद्रीप्रसाद पञ्चोली, अजमेर।

सभा के अन्य प्रकल्पों हेतु दान

१. श्रीमती सन्तोष मुंजाल, नई दिल्ली २. श्री ओम्प्रकाश नवाल, अजमेर ३. श्री सुभाष नवाल, अजमेर ४. श्रीमती मृदुला चोटानी, गुरुग्राम ४. श्रीमती मालती चोटानी, गुरुग्राम ५. श्री मनीष चोटानी, गुरुग्राम ६. श्रीमती गायत्री चोटानी, गुरुग्राम ७. कु. मान्यामनीषी चोटानी, गुरुग्राम ८. कु. आनन्दी मनीषी, गुरुग्राम ९. श्री आर्यमन चोटानी, गुरुग्राम १०. श्री संजय अरोड़ा, गुरुग्राम ११. श्री अनिल कुमार कुब्बा, गुरुग्राम १२. श्री अनुप कुब्बा, गुरुग्राम १३. श्री एन.पी. चावला, गुरुग्राम १४. श्री अशोक कुमार, गुरुग्राम १५. श्री सुरेन्द्र मेहता, गुरुग्राम १६. डॉ. आशीष सिंगला, गुरुग्राम १७. श्री समीर सिंगला, गुरुग्राम १८. श्री सतप्रकाश सिंगला, गुरुग्राम १९. श्री यशपाल कामरा, गुरुग्राम २०. श्री महेन्द्र सिंह यादव, गुरुग्राम २१. श्री सज्जनसिंह कोठारी, जयपुर २२. श्रीमती लक्ष्मी आहूजा, गुरुग्राम २३. श्रीमती मधु सैनी, गुरुग्राम २४. श्रीमती सुमित्रा कालड़ा व अथर्व कालड़ा, गुरुग्राम २५. श्री नरेन्द्र राठी, गुरुग्राम २६. श्री जी.एन. गोसाईं, गुरुग्राम २७. श्री जीत कुमार रखेजा, दिल्ली २८. श्रीमती सुमन चान्दना, गुरुग्राम २९. श्री ईश्वरसिंह आर्य, हिसार ३०. श्री जयपाल गर्ग, नई दिल्ली ३१. श्री शिवकुमार मदान, नई दिल्ली ३२. श्री भूपसिंह सैनी, नई दिल्ली ३३. श्री सूरजभान डागर, नई दिल्ली ३४. श्री जगदीश चन्द्र, नई दिल्ली ३५. श्रीमती कुमुदिनी आर्य, अजमेर ३६. महिला यज्ञ पार्क समिति, गुरुग्राम ३७. श्री पी.के. दत्ता, गुरुग्राम ३८. श्री प्रमोद कुमार यादव, गुरुग्राम ३९. श्री जितेन्द्र कुमार, गुरुग्राम ४०. श्रीमती श्वेता गौतम, गुरुग्राम ४१. श्री सूरज गर्ग, गुरुग्राम ४२. श्री एस. के. परुथी, गुरुग्राम ४३. श्री ओ.पी.शर्मा, गुरुग्राम ४४. श्री हरीश कुमार आर्य, गुरुग्राम ४५. श्री सुधीर नागपाल, गुरुग्राम ४६. श्री रोशनलाल ठक्कर, गुरुग्राम ४७. श्री नरेन्द्र यादव, गुरुग्राम ४८. श्री राजीव खेड़ा, गुरुग्राम ४९. श्री ज्ञानमित्र वर्मा, गुरुग्राम ५०. श्री ईसरदास गोयल, गुरुग्राम ५१. श्री वीरेन्द्र सेतिया, गुरुग्राम ५२. अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेद पीठ, नईदिल्ली ५३. श्रीमती रेखा आहूजा, गुरुग्राम ५४. श्री रमेश सहरा, गुरुग्राम ५५. श्री धर्मदेव नागपाल, गुरुग्राम ५६. श्रीमती कान्ता चौधरी, गुरुग्राम ५७. श्रीमती लक्ष्मी मुंजाल, गुरुग्राम ५८. श्रीमती

कैलाश कुमारी, गुरुग्राम ५९. श्री तिलकराज नागपाल, गुरुग्राम ६०. श्री अशोक कुमार अरोड़ा, मोहाली ६१. श्री महेन्द्र सचदेवा, गुरुग्राम ६२. श्री सतपाल वत्स आर्य, झज्जर ६३. श्री दिनेश बजाज, गुरुग्राम ६४. श्रीमती रश्मि कथूरिया, दिल्ली ६५. श्रीमती मनीषा कपूर ६६. श्री अजय छोकरा, गुरुग्राम ६७. श्री रमेश चन्द सेतिया, गुरुग्राम ६८. श्री अनुभव दुरेजा, गुरुग्राम ६९. श्रीमती सरोज मनचन्दा, गुरुग्राम ७०. श्री लोकेश सेठी, गुरुग्राम ७१. श्रीमती सुमित्रा कालड़ा, गुरुग्राम ७२. श्री कमलकिशोर नरेश, गुरुग्राम ७३. डॉ. मोहनलाल अग्रवाल, लखनऊ ७४. डॉ. मुकेश आर्य, बीकानेर ७५. श्री मुनीश गुलाटी, यू.एस.ए. ७६. श्री रुद्रदत्त ऋषि, पंचकुला ७७. आर्यसमाज, शास्त्रीनगर, मेरठ ७८. श्री रामसिंह आर्य, मेरठ ७९. श्रीमती सावित्री नई दिल्ली ८०. मन्त्री आर्यसमाज मेरठ, ८१. मन्त्री, आर्यसमाज, पंचकुला ८२. श्री वेदपाल आर्य, सोनीपत ८३. श्रीमती दीक्षा आचार्या, सोनीपत ८४. श्रीमती गायत्री मुंजाल, सोनीपत ८५. श्री देवकीनन्दन, सोनीपत।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति ‘वैचारिक क्रान्ति’ को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: ‘सत्यार्थ प्रकाश’ की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व ‘विश्व पुस्तक मेला’ दिल्ली में प्रतिवर्ष ‘सत्यार्थप्रकाश’ के साथ ‘महर्षि का जीवन-चरित्र’ एवं ‘आर्याभिविनय’ पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है।‘सत्यार्थप्रकाश’ ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ ‘सत्यार्थप्रकाश वितरण’ अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**